

गाँधी-गंगा

(दोनों भाग में से चुने हुए अंशों का हिन्दी अनुवाद)

संपादक: महेन्द्र मेघाणी

अनुवाद: डॉ. नीरा कांतिलाल नाहटा





गाँधी-गंगा

(दोनों भाग में से चुने हुए अंशों का हिन्दी अनुवाद)

संपादक
महेन्द्र मेघाणी

अनुवाद
डॉ. नीरा कांतिलाल नाहटा

पहली आवृत्ति, प्रति ५,०००, जून २००९

मुद्रक और प्रकाशक
विवेक जितेन्द्र देसाई
नवजीवन मुद्रणालय

अहमदाबाद-३८० ०१४

फोन: ०७९-२७५४०६३५ | २७५४२६३४

E-mail : sales@navajivantrust.org | Website : www.navajivantrust.org



प्रकाशक का निवेदन

पुस्तकों के प्रसार को 'पुण्य के व्यापार' का दर्जा देनेवाले श्री महेन्द्रभाई मेघाणी प्रतिदिन नई योजनाओं के द्वारा अच्छी पुस्तकों के प्रसार का, पुण्य के व्यापार का काम आजीवन करते रहे हैं।

वे अच्छे अनुवादक और तटस्थ संपादक भी हैं। उनका वाचन विशाल है और पसंदगी बेमिसाल है। इसके परिपाक स्वरूप हमें 'गाँधी-गंगा' के दो भाग उनसे मिले। गाँधीजी के समकालीन, साथियों, गाँधी घराने के लेखकों तथा गुजराती भाषा के नामी साहित्यकारों ने गाँधीजी के बारे में संस्मरणों के स्वरूप में, प्रसंगों के स्वरूप में, काव्य के रूप में, कथा-कहानी के रूप में, ढेर सारी बातें लिखी हैं। उसमें से हँस चारा चरता हो इस तरह महेन्द्रभाई ने कुल बहत्तर पुस्तकों में से तीनसौ से अधिक स्मरणीय प्रसंग, संस्मरण, काव्य, कथा-कहानी 'गाँधी-गंगा' के दो भाग में हमें संपादित करके दिये हैं

नई पीढ़ी को गाँधीजी के जीवन और कार्य का परिचय हो, व गाँधी-साहित्य वह पढ़े, इस हेतु से नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ और बम्बई सर्वोदय मंडल के सहयोग से हर साल शाला-कालिजों में 'गाँधी जीवन झाँकी', 'गाँधी विचार प्रवेश' तथा 'गाँधी विचार परिचय' परीक्षाएँ ली जाती हैं। प्रसंगों और संस्मरणों के द्वारा गाँधीजी की बातें विद्यार्थियों को अधिक याद रहती हैं, इस दृष्टि से इन परीक्षाओं के लिए 'गाँधी-गंगा' के दो भागों में से चुने हुए ८८ प्रसंगों-संस्मरणों का यह संस्करण तैयार किया गया है। इस तरह, यह संस्करण 'गाँधी-गंगा' का आचमन कराता है।

'गाँधी-गंगा' का आचमन भले ही पाठ्यपुस्तक के रूप में तैयार किया हो, सामान्य वाचक के लिए भी उसका वाचन गंगाजल के आचमन के बराबर होगा और इसे वाचकों का उचित सत्कार मिलेगा, ऐसी हमें पूरी श्रद्धा है।

इस संस्करण को तैयार करके इसका प्रकाशन करने की अनुमति देने के लिए श्री महेन्द्रभाई मेघाणी के हम आभारी हैं।



अनुक्रमणिका

मो. क. गाँधी

१. तिरस्कार

विनोबा भावे

२. 'जिस गाँधी को मैंने जाना'
३. 'उजाला हो गया है'
४. 'मलयगिरि का गौरक-गान'

लल्लुभाई म. पटेल

५. 'दो शब्द काट दिये'
६. 'घी का दीपक'
७. 'भाषण के पहले का काम'
८. एक अनोखा धोबी
९. 'गरीबी से काँप रहा हूँ'

मिली ग्रेहाम पोलाक

१०. जोहनेसबर्ग की सभा
११. 'सत्री का स्थान'

उमाशंकर जोशी

१२. 'बचत पर नज़र'
१३. 'राजा के अतिथि'
१४. 'किस मुँह से यह पी सकता हूँ ?'
१५. 'गरीबों की बा'
१६. 'अनमोल अधेला'
१७. 'पहले मेरा सिर फोड़ो !'
१८. 'दोनों चुपचाप बैठे रहे'
१९. 'महात्मा' न कहो'

काका कालेलकर

२०. 'गीता कंठस्थ की'
२१. 'चालीस हजार वापस लौटाए'
२२. 'अस्पृश्यता की शर्त पर तो...'
२३. 'धर्मयुद्ध का नियम'
२४. 'कड़ी सज़ा'
२५. 'पापी का भी प्रतिनिधि'
२६. 'माँ-जैसा वात्सल्य'
२७. राजनैतिक क़ैदी

२८. 'बढ़िया खिलाड़ी'

२९. 'तीन तप (युग) की स्वराज्य-सेवा'

३०. 'सत्यनिष्ठ की पूजा'

३१. 'सनातनी लेकिन सुधारक'

३२. साबरमती से यरवडा

३३. 'जेल के दौरान अध्ययन'

३४. 'लँगड़ाते दत्तोबा'

३५. 'मराठी की शिक्षा'

३६. 'बिदाई'

जुगताराम दवे

३७. आश्रम-जीवन

३८. 'नवजीवन'

शाहनवाज़ खां

३९. 'जिंदगी भर गूँजते रहेंगे...'

रविशंकर (महाराज) व्यास

४०. 'जितना है उतना तो उपयोग कीजिए।'

रामनारायण वि. पाठक

४१. 'विरोधी शक्तिश्रों का समन्वय'

शंकरलाल बैंकर

४२. 'सयाना कूटनीतिज्ञ'

४३. 'क्या यह कहूँ कि फिल्म बनाओ ?'

४४. 'विश्वामित्र ऐसा कैसे कर सकते हैं ?'

नरहरि परीख

४५. महादेवभाई की डायरी'

घनश्यामदास बिरला

४६. 'बीमार की मृत्युशैया पर'

बलवंतसिंह

४७. 'चिड़ियाँ चुग गईं खेत'

४८. 'निःस्वार्थ सेवा से ही हृदय-स्पर्श हो सकता है।'

क्लेयर शेरिडन

४९. भव्य सादगी'



धीरुभाई ठाकर

५०. 'भव्योज्ज्वल जीवन की चिरप्रतिष्ठा'

इन्दुलाल याज्ञिक

५१. 'ऐतिहासिक सभा'

तनसुख भट्ट

५२. 'अहिंसा का अलग प्रकार'

मुकुलभाई कलार्थी

५३. 'बापू-मोची'

५४. 'भूल-चूक माफ़ करना'

५५. 'सही तरीक़े से गाया न जाए तो....!'

५६. 'इतने घबरा क्यों गए ?'

५७. 'आज्ञा-पालन'

५८. 'मैं होती तो फ़र्क़ पड़ता'

५९. 'आप ? और मुझसे डरते हैं !'

६०. 'बा न खाये, तो मैं खाऊँगा'

रावजीभाई म. पटेल

६१. 'गीताजी का गूढ़ार्थ'

६२. 'सबके बापू'

हरिप्रसाद ब्र. देसाई

६३. 'नयी पीढ़ी जमानी है'

गुणवंत शाह

६४. 'जटायु जीवंत हुआ'

महेन्द्र मेघाणी

६५. 'बिखरी महफ़िल के पतंगे'

६६. 'गाँधी-हृदय में पड़ी छवियाँ'

केशुभाई भावसार

६७. 'यह समन्वय'

मनुबहन गाँधी

६८. 'कहने की अपेक्षा करना अच्छा'

६९. 'रेल के डिब्बे के) दो विभाग का परिग्रह'

आदम घोड़ीवाला

७०. 'क्या हम प्रासंगिक हैं ?'

जगदीश चावडा

७१. 'आफ़ताब' (सूर्य)

जुगताराम दवे

७२. 'आश्रम-जीवन'

७३. 'डिब्बा ही घर-डिब्बा ही आश्रम'

७४. 'आनंदी सत्याग्रही'

जोसेफ़ डोक

७५. 'कथानायक'

जीवतराम कृपालानी

७६. 'क्या गाँधीजी आधुनिक थे ?'

मिर्ज़ा इस्माइल

७७. 'संत, राजनीतिज्ञ, राष्ट्रविधायक'

वल्लभभाई पटेल

७८. 'आंगन में बहती गंगा'

जॉन हेन्स होम्स

७९. 'एक नरोत्तम'

अमृतलाल बेगड़

८०. 'अहिंसा को युद्ध के मैदान में लानेवाले'

नगीनदास संघवी

८१. 'कान की एक बूटी'

चंद्रशेखर प्रा. शुक्ल

८२. 'गरीबी को भी पीछे छोड़ने वाली !'

८३. स्वच्छताका पाठ

महादेव देसाई

८४. 'वियोग-दुख'

रवींद्रनाथ ठाकुर

८५. 'कलेजे में ज्वालामुखी, आँखों में अमृतधार'

लुई फिशर

८६. 'गाँधीजी और टैगोर'

प्यारेलाल नैय्यर

८७. 'छोटी-छोटी बातों के माध्यम से जीवन-गढ़न'

८८. 'अंतिम दिन'



मो. क. गाँधी

१. तिरस्कार

इस संसार में किसी का भी तिरस्कार करने में स्वयं को असमर्थ पाता हूँ। ईश्वर-परायणता की खातिर, बहुत संयम रखकर चालीस वर्ष से मैंने किसी से भी द्वेष करना छोड़ दिया है। मैं जानता हूँ कि यह बहुत बड़ा दावा है, फिर भी विनम्रता से मैं इसे सबके समक्ष कर रहा हूँ। लेकिन जहाँ-जहाँ दुष्कर्म होते हों, वहाँ-वहाँ मैं उसे धिक्कारने में तो समर्थ हूँ ही और धिक्कारता भी हूँ। अंग्रेजों ने भारत में जो शासनप्रणाली अपनाई, उसे मैं धिक्कारता हूँ, उससे घृणा करता हूँ। अंग्रेज़-वर्ग भारत में जो ज़बरदस्ती कर रहा है उसका मैं पूर्णतः द्वेषी हूँ। भारत का निर्दयता से शोषण करने की उनकी नीति को मैं हृदय से धिक्कारता हूँ। इसी प्रकार जिस घृणित प्रथा के करोड़ों हिंदू जवाबदार बन गये हैं उस अस्पृश्यता की प्रथा को भी मैं धिक्कारता हूँ। परन्तु मैं नहीं धिक्कारता सिरजोरी करनेवाले अंग्रेज़ को और न ही हिंदू को। मुझसे जो कुछ संभव हो सकता है उन उपायों द्वारा मैं उन्हें सुधारने का प्रयास करता हूँ।



विनोबा भावे

२. 'जिस गाँधी को मैंने जाना'

गाँधीजी को समग्र देश बापू कहता रहा, पर मुझे लगता है कि वे पिता से अधिक माता थे। जब हम उनका स्मरण करते हैं तब उनके अनेक गुणों की अपेक्षा उनका वात्सल्य ही अधिक याद आता है। प्राचीन परम्परा के फलरूप और नूतन परम्परा के बीजरूप एक वत्सल माता के समान महापुरुष के दर्शन हमने बापू में किए हैं।

*

'गीता' के कर्मयोग का प्रत्यक्ष आचरण मैंने बापू में देखा। स्थितप्रज्ञ के लक्षण जिस पर लागू पड़ते हों – ऐसा शरीरधारी ढूँढ़ने पर भी मुश्किल से मिलता है, परन्तु इन लक्षणों के बहुत नज़दीक पहुँचे हुए महापुरुष को मैंने अपनी आँखों से देखा है। मैं मानता हूँ कि मेरा जीवन धन्य बन गया क्योंकि उनके आश्रय में रहने का अवसर मुझे मिला। उनकी शरण में जानेवाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा ही अनुभव होता था कि वह स्वयं बुरा था, अच्छा बन गया; छोटा था, बड़ा बन गया। उन्होंने हज़ारों का महत्त्व बढ़ाया।

*

गाँधीजी के कुछ विचार कई लोगों को पसंद नहीं आते थे। तब कोई तो उनसे कहते भी थे कि अब आप हिमालय पर चले जायें तो अच्छा ! यह सुनकर बापू हँसते हुए कहते कि यदि आप लोग हिमालय पर जायेंगे तो मैं भी आपके पीछे-पीछे आऊँगा, और यदि यहीं रहेंगे तो आपका यह सेवक भी यहीं रहेगा। जहाँ स्वामी वहाँ सेवक। वे तो यह भी कहते कि मेरी तपस्या का हिमालय तो वहाँ है जहाँ अबतक दरिद्रता है, जहाँ से शोषण हटाना है, दुख-निवारण करना है।

*

एक नैतिक आवाज़ उठे और सारा देश उसका अनुसरण करे, ऐसी कोई संस्था या ऐसा व्यक्ति आज देश में दिखाई नहीं देता। विभिन्न पक्षों के नेता जनता के समक्ष जाकर एक-दूसरे की बातों का खण्डन करते हैं। इससे जनता में किसी प्रकार की कार्यशीलता उत्पन्न नहीं होती। जनता असमंजस की स्थिति में है और समझ नहीं पा रही कि कहाँ जायें, क्या करें ? देश में निष्क्रियता, शून्यता और खालीपन भर गया है।



३. 'उजाला हो गया है'

स्वराज्य मिला और परमेश्वर ने गाँधीजी को उठा लिया। परमेश्वर का हेतु समझना मनुष्य के लिए मुश्किल है फिर भी चिंतन द्वारा इसका अनुमान किया जा सकता है।

हमारे देश को संपूर्ण स्वराज्य मिले, इससे कुछ कम की इच्छा यदि ईश्वर की होती तो उसने गाँधीजी को हमारे मध्य रहने ही नहीं दिया होता। परन्तु लगता है कि उसकी इच्छा है कि देश हर प्रकार की पराधीनता से मुक्त हो जाये। अंग्रेजों के चले जाने से बाहरी दबाव खत्म हुआ। गाँधीजी को उठा लेकर ईश्वर ने हमारी बुद्धि को झकझोर दिया है। मानो हमें यह कहते हों कि अब तुम सब हर तरह से स्वतंत्र हो, स्वतंत्र बुद्धि से विचार करो और सही अर्थ में स्वतंत्र बनो।

मनुष्य, चाहे जितना महान हो पर क्या वह संपूर्ण देश को स्वराज्य दिला सकता है ? अपनी नींद जैसे मुझे ही लेनी पड़ती है वैसे ही अपना स्वराज्य मुझे ही प्राप्त करना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि परमेश्वर हमेशा हमारे लिए महापुरुष भेजता रहे तो उससे हमारी उन्नति ही होगी। भगवान बार-बार अवतार नहीं लेता इसे भी उसकी कृपा ही समझनी चाहिए।

लोग कहते हैं कि गाँधीजी के जाने से चारों ओर अँधेरा छा गया है। मैं कहता हूँ कि अभी तो उजाला हुआ है, आँखें खोलिए तो समझ में आयेगा। गाँधीजी बार-बार कहते थे कि मैं जो कुछ कहता हूँ उस पर आप स्वतंत्र बुद्धि से विचार कीजिए और वह आपको उचित लगे तभी उस पर अमल कीजिए। परन्तु हम विचार करने की तकलीफ़ उठाये बिना उनके पीछे-पीछे चलते रहते थे। इसलिए ईश्वर ने तय किया कि इन लोगों को विचार करने की तकलीफ़ देनी ही पड़ेगी।



४. 'मलयगिरि का गौरव-गान'

वटवृक्ष की छाया में छोटे पौधों की वृद्धि कुंठित हो जाती है, क्योंकि उस छोटे पौधे को मिलनेवाला पोषण वटवृक्ष ही ग्रहण कर लेता है। इस उदाहरण के द्वारा कहा जाता है कि बड़े लोगों के आश्रय में छोटे लोग पनप नहीं सकते।

परन्तु बड़े लोग और महापुरुष में अंतर होता है। महापुरुष महात्वाकांक्षी हों पर स्वार्थी नहीं होते, वे महान ही होते हैं। वे दूसरों का पोषण खानेवाले नहीं बल्कि दूसरों को पोषण प्रदान करनेवाले होते हैं। उन्हें वत्सला गाय की उपमा दी जा सकती है। गाय अपना दूध पिलाकर बछड़े को पालती-पोसती है, तभी बछड़ा प्रतिदिन बढ़ता जाता है। महापुरुषों की यही आकांक्षा होती है कि उनके द्वारा सभी की उन्नति हो। दूसरों को ऊपर उठाने के लिए वे स्वयं नीचे झुकते हैं।

बापू के जीवन में हमने गो-वत्स-न्याय का उदाहरण देखा है। उनका आश्रय लेनेवाले सभी छोटे थे तो बड़े बन गये, बुरे थे तो अच्छे बन गये, कठोर थे तो कोमल बन गये। बापू के साथ अपने संबंध की गाथा यदि कोई लिखने बैठेगा तो इसी अनुभव को व्यक्त करेगा। कवि भी इन शब्दों में गवाही देते हैं कि, "जिसके आश्रय में रहनेवाले वृक्ष जैसे के जैसे रहते हैं, वह सुवर्णगिरि या रजतगिरि क्यों न हो, उसका गौरव हम नहीं गाते। हम तो गौरव-गान करते हैं, उस मलय-गिरि का जिसके आश्रय में सामान्य वृक्ष भी चंदन बन जाता है।"



लल्लुभाई म. पटेल

५. 'दो शब्द काट दिये'

कलकत्ता में हिंदू-मुस्लिम दंगा चल रहा था। एक उपद्रवी टोली ने तो गाँधीजी के निवास पर हमला करके दरवाज़े-खिड़कियों के काँच फोड़ डाले और फर्निचर को भी नुकसान पहुँचाया। गाँधीजी पर भी ईंट फेंकी गई परन्तु सद्भाग्य से उन्हें कोई चोट नहीं आयी।

इन घटनाओं से वे गहरे मंथन में डूब गये। असहाय बनकर देखते रहना तो उनका स्वभाव ही नहीं था। अंत में उपवास करने का निर्णय उन्होंने ज़ाहिर किया।

उन्होंने लोगों से कहा कि अपनी समझ और सुध-बुध भूले कलकत्ता को ठिकाने पर लाने के लिए मैं उपवास कर रहा हूँ। मेरा धर्म तो घर-घर घूमकर उन्हें अपने मतभेद भूल कर, एक होकर शांतिपूर्वक रहने के लिए समझाना है परन्तु इस उम्र में मैं यह नहीं कर पाऊँगा, इसलिए मैंने उपवास का आश्रय लिया है।

उपवास के दौरान पानी, सोडा और नीबू का रस लेने का निर्णय उन्होंने अपने निवेदन में व्यक्त किया था। राजाजी उस समय बंगाल के गर्वनर थे। उन्हें लगा कि गाँधीजी ने नीबू का रस लेना स्वीकार किया है तो अब भी गाँधीजी को उपवास न करने के लिए समझाने का अवकाश है।

राजाजी गाँधीजी के पास पहुँचे और अपनी दलीलें प्रस्तुत करने लगे। लेकिन गाँधीजी को उपवास के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं सूझ रहा था। अंधकार में से प्रकाश ढूँढ़ने का यही मार्ग उन्हें उचित लगता था।

दलीलें करते हुए, अंत में राजाजी का धीरज खूटने लगा। वे बोल उठे: 'उपवास ही करना हो तो यह नीबू का रस किसलिए ?'

तुरंत गाँधीजी ने निर्मल बाबू की ओर देखा तथा कहा, 'मेरा निवेदन आपने पढ़ा तब यह क्यों नहीं देखा ? राजाजी मुझे वर्षों से जानते हैं इसलिए उन्होंने झट मेरी कमज़ोरी पकड़



ली, वे बिलकुल सही कह रहे हैं। क्योंकि मुझमें कहीं गहरी यह आशा थी कि मैं उपवास से पार उतर जाऊँगा, इसीलिए मैंने नीबू का उल्लेख किया था। परन्तु राजाजी ने मेरी दुर्बलता पकड़ ली है।'

इतना कह कर पास पड़ी पेन्सिल उठाकर 'नीबू का रस" शब्द निवेदन से काट दिया।



६. 'घी का दीपक'

उस दिन सेवाग्राम में नित्य-संध्याप्रार्थना के पश्चात् बापू प्रवचन करनेवाले थे। गाँधी जयंती का दिन होने के कारण आस-पास के गाँवों के लोग भी प्रार्थना में उपस्थित थे। गाँधीजी के बैठने के लिए एक ऊँचा स्थान बनाया गया था। आसपास कोई श्रृंगार या सजावट नहीं थी। सफेद खादी की गद्दी से बैठक सुशोभित थी। थोड़ी दूरी पर एक घी का दिया जल रहा था। गाँधीजी वहाँ आये। उनका ध्यान उस दीपक की ओर गया। उन्होंने आँखें बंद कीं, प्रार्थना शुरू हो गई।

प्रार्थना के पश्चात्, प्रवचन करने से पहले बापू ने प्रश्न किया--'यह दीपक कौन लाया ?'
बा बोलीं, 'इसे मैं लायी हूँ।'

गाँधीजी ने पूछा, 'कहाँ से मँगवाया ?'

बा ने कहा—'गाँव से !'

क्षणभर गाँधीजी बा की ओर देखते रहे। दीपक जला के अपने पति के स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए प्रभु से प्रार्थना करना हिंदु स्त्री का धर्म है – यह मानकर कस्तूरबा ने यह दीपक मँगवाकर जलाया था। पर बापू ने यह प्रश्न क्यों पूछा, बा समझ न सकीं।

फिर गाँधीजी बोले: आज यदि सबसे खराब कुछ हुआ है तो यह कि बा ने दीया मँगवाकर घी का दीपक जलाया है। आज मेरा जन्मदिन है, क्या इसीलिए घी का दीया जलाया गया है ? मेरे आस-पास के गाँवों में रहनेवालों का जीवन मैं रोज़ देखता हूँ। उन्हें रोटी में चुपड़ने के लिए तेल की दो बूँद तक नहीं मिलती और मेरे आश्रम में आज घी जल रहा है। मेरा जन्मदिन है तो क्या हुआ ? आज के दिन सत्कर्म करना चाहिए, पाप नहीं। गरीब किसान को जो चीज़ नहीं मिलती, - उसका इस प्रकार दुरुपयोग हमसे कैसे किया जाए ?



७. 'भाषण के पहले का काम'

एक बार गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका से लंदन गये हुए थे। अफ्रिका के महान हिन्दुस्तानी नेता के रूप में उनकी ख्याति लंदन में भी फैली थी। उस समय बहुत-से हिंदुस्तानी लंदन में रहते थे। उनमें कुछ क्रांतिकारी युवा थे और कुछ विद्यार्थी। सभी देश की आज़ादी की ललक से भरे हुए थे। गाँधीजी की उपस्थिति का लाभ लेकर उन्होंने लंदन में एक समारोह आयोजित करने का विचार किया। समारोह में बस इतना ही कार्यक्रम था कि पहले भोजन और तत्पश्चात् भाषण।

युवाओं ने गाँधीजी से अध्यक्ष-पद स्वीकार करने की विनती की। गाँधीजी ने इस शर्त पर स्वीकृति दी कि भोजन शाकाहारी होगा तथा उसमें मद्य (शराब) का समावेश नहीं होगा ! युवाओं ने गाँधीजी की शर्त सहर्ष मान ली।

अफ्रिका-आंदोलन के विजेता गाँधीजी अध्यक्ष के रूप में आयेंगे यह सोचकर युवा वर्ग अति प्रसन्न था और एक सुंदर भाषण की अपेक्षा कर रहा था । सभी लोग उत्साह से काम में लग गये। थालियाँ साफ़ करना, साग-भाजी काटना आदि कार्य उन्होंने स्वयं ही बाँट लिए। गाँधीजी भी समारोह के समय से लगभग ६ घंटे पहले पहुँच गये और उन सब युवकों के साथ काम करने लगे। किसी को पता तक न चला कि समारोह के अध्यक्ष गाँधीजी भी उन्हीं के साथ बैठ कर बर्तन साफ़ कर रहे हैं।

समारोह का समय होने आया। प्रमुख कार्यकर्ता और नेतागण गाँधीजी के स्वागत के लिए दरवाज़े के पास आ खड़े हुए। परन्तु गाँधीजी नहीं आये। किसी ने सुझाव दिया कि मि. गाँधी को आज विलम्ब हो रहा है अतः हम पहले भोजन की व्यवस्था देख लें। इस उद्देश्य से एक नेता अंदर गये। एक दुबला युवा अन्य युवकों के साथ बैठा रसोई का काम कर रहा था, उस पर दृष्टि पड़ते ही, अचंभित नज़रों से वे एक-टक देखते रह गये। दूसरों को संदेह हुआ कि कहीं कोई सी.आई.डी. तो नहीं घुस गया है ? आखिर हिम्मत करके उन्होंने पूछा- 'ये कौन हैं?'



'मि. गाँधी, आज के हमारे समारोह के अध्यक्ष स्वयं यहाँ हैं। उस नेताने लज्जित होते हुए कहा।'

कानोंकान बात फैली और समारोह के लिए पधारे सभी को ज्ञात हो गया कि हम सब जिनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, वे अतिथि तो रसोई में काम कर रहे हैं। सभी के दिल में खलबली मच गयी।

'अरे, मि. गाँधी से ऐसे काम करवाने चाहिए क्या ?' कितने ही बोल पड़े।

क्रांतिकारी युवा गाँधीजी का यह तरीका देख विस्मित थे। वे उनके पास दौड़े और हाथ जोड़कर काम बंद करने की विनती करने लगे।

गाँधीजी ने कहा, 'नहीं, अब पूरा कार्य करके ही उठेंगे।'

कार्य पूरा हुआ। फिर थालियाँ परोसी गईं। गाँधीजी ने परोसने में भी भाग लिया और भोजन के पश्चात् अध्यक्षपद से भाषण भी दिया।



८. एक अनोखा धोबी

दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी के नेतृत्व में हिन्दुस्तानियों ने सत्याग्रह आंदोलन किया था। बड़ी संख्या में लोग जेल गये। उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिनके कुटुम्ब की देखभाल करनेवाला उनके सिवाय कोई न था। ऐसे परिवारों के लिए गाँधीजी के आश्रम टालस्टॉय फार्म में व्यवस्था की गई।

गाँधीजी जेल से छूटकर आने के बाद काम में बहुत व्यस्त रहते थे फिर भी समय निकालकर इन परिवारों की बहनों से मिलना, उन्हें आश्वस्त करना में चूकते नहीं थे। उनके घरेलू कार्यों में भी कई बार मदद करते थे।

एक दिन गाँधीजी अपने कपड़े धोने नदी की ओर जा रहे थे। छोटे-छोटे बालकों की माताओं की तकलीफ़ का खयाल कर वे उनके पास जाकर बोले, 'आज आप सबके कपड़े मैं धो डालूँगा। नदी काफ़ी दूर है और आपको इन नन्हे-मुन्नों को संभालना होता है। बच्चों के मल'-मूत्र वाले कपड़े हों तो वह भी मुझे दे दीजिए।'

'अरे, गाँधीभाई को भला ऐसे कपड़े धोने के लिए दिये जा सकते हैं क्या ! यह तो देर-सबेर हम ही धो डालेंगी।' प्रेम और संकोचमिश्रित आत्मीयता से बहनें बोलीं।

पर गाँधीजी हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने कपड़े ले जाने का आग्रह जारी रखा। बहनों के संकोच का पार न था। परन्तु अंत में प्रेम की विजय हुई। सारे कपड़ों का एक बड़ा गट्टर बाँधा और पीठ पर लादकर गाँधीभाई नदी की ओर चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर प्रेमपूर्वक सारे कपड़े धोये, नदीतट पर सुखाये। उनकी तह करके 'फार्म' में ले आये और घर-घर घूमकर बहनों को उनके कपड़े पहुँचाये। ऐसे धोबी द्वारा धुले वस्त्र पहनते हुए बहनों ने कैसी-कैसी आत्मीय भावनाएँ अनुभव की होंगी।



९. 'गरीबी से काँप रहा हूँ'

दिल्ली में कड़ाके की सर्दी के दिन थे। गाँधीजी उस समय बिरला-भवन में रहते थे। सुबह की प्रार्थना के लिए वे ज़ल्दी उठते और हाथ जम जाये ऐसे ठंडे पानी से अपना मुँह धोते थे। इस दृश्य को देखने वाले के मन में तुरंत यह ख्याल आता कि बापू गर्म पानी लें तो कितना अच्छा ! हिंदुस्तान की गरीबी से निरन्तर द्रवित उनका अंतर कहता कि पानी गर्म करने का बोझ मैं अपने इस गरीब देश पर क्यों लादूँ ?

ऐसी ही सर्दी में, एक दिन सुबह की प्रार्थना के बाद वे काम में जुट गये। डाक से आयी चिट्ठियों के खाली लिफ़ाफ़ों का ढेर उन्होंने कमरे में देखा। हाथ में कैंची लेकर लिफ़ाफ़े काटने लगे। एक ओर का कोरा कागज़, एक पर एक रखकर वे लिखने के लिए पैड बना रहे थे। इस गरीब देश में कागज़ यों बेकार चला जाये –यह उन्हें सहन नहीं हो रहा था। लेकिन लिफ़ाफ़े को काटते हुए उनके हाथ काँप रहे थे। इतनी ठंडी में गाँधीजी यह काम बंद कर दें तो अच्छा – यह सोचकर एक ने उनसे कहा, 'बापू! आप सर्दी से काँप रहे हैं।'

गाँधीजी: 'नहीं ! सर्दी से नहीं काँप रहा हूँ। कुदरती सर्दी तो शरीर के लिए लाभप्रद है। मैं तो हिंद की मूक जनता की गरीबी और निराधारता के विचार से काँप रहा हूँ। इस गरीबी का अंत कब आयेगा ?'

लिफ़ाफ़े काटने का अपना कार्य उन्होंने जारी रखा।



मिली ग्रेहाम पोलाक

१०. जोहनेसबर्ग की सभा

जोहनेसबर्ग की एक शाम। भारतीयों तथा गाँधीजी के प्रति समभाव रखनेवालों की एक विशाल सभा का आयोजन था। हॉल खचाखच भरा था, तिल-भर जगह नहीं बची थी और लोगों को दरवाजे के बाहर तथा बरामदे में खड़े रहना पड़ा। गाँधीजी मुख्य वक्ता थे। वे जहाँ-जहाँ जाते, हर जगह उन्हें सुनने के लिए लोग उमड़ पड़ते थे। सभा के समाप्त होने पर गाँधीजी व्यासपीठ से उतरे और कुछ लोगों के साथ कुछ बातें कीं। फिर मैं और वे साथ-साथ बाहर निकले। हम दरवाजे तक पहुँचे कि मैंने अंधेरे में खड़े एक व्यक्ति को देखा। ऐसा लगा कि गाँधीजी की नज़र भी उस पर पड़ी, क्योंकि वे सीधे उस आदमी के पास गये, उसके हाथ पर अपना हाथ धरा और शांत, स्वस्थ तथा गंभीर आवाज़ में उसे कुछ कहने लगे। वह क्षणभर को झिझका, फिर मुड़कर गाँधीजी के साथ चलने लगा। मैं उनके दूसरी ओर चलने लगी। इस तरह चलते हुए हमने पूरा मुहल्ला पार किया। वे दोनों क्या बातें कर रहे थे, यदि मैं सुन पाती तो भी समझती नहीं। पर मैं वह सुन ही नहीं पा रही थी क्योंकि दोनों बहुत ही धीमी आवाज़ में बोल रहे थे। मुहल्ले का छोर आया तो उस आदमी ने गाँधीजी के हाथ में कुछ पकड़ाया और चलता बना। इस पूरी घटना से मैं कुछ व्यग्र हो गई। उसके जाने पर मैंने गाँधीजी से पूछा: 'इसे क्या चाहिए था – कुछ खास माँगने आया था?'

गाँधीजी बोले, 'हाँ ! वह मेरी जान लेने आया था।'

'आपकी जान लेने? मैं चौंक उठी, 'आपकी जान लेने ? कितना भयानक ! क्या वह पागल है?'

"नहीं, वह यह मानता है कि मैं अपने लोगों के साथ दगा कर रहा हूँ। मैं सरकार के षड़यंत्र में जुड़कर भारतीयों का अहित करना चाहता हूँ, फिर भी उनका मित्र और नेता होने का दिखावा करता हूँ।"



“परन्तु ऐसा मानना निरी दुष्टता है, यह भयानक बात है।” – मैं ज़ोर से बोली, “इसे तो पुलिस के हाथों पकड़वाना चाहिए। आपने इसे इस तरह जाने क्यों दिया ? पागल ही होगा वह।”

गाँधीजी ने कहा, “नहीं पागल नहीं है, मात्र वहम से भरा हुआ है। आपने देखा कि मैंने उसके साथ बातें कीं उसके बाद उसने छुरी मेरे हाथ में दे दी। उसने इसी छुरी का वार मुझ पर करने का निर्णय किया था।”

“उसने यदि अंधेरे में प्रहार किया होता तो....मैं....”

गाँधीजी बीच में ही बोल उठे : “इतना घबराओ मत। उसके मन में तो था कि इसे मारूँ, पर ऐसा करने की पूरी हिम्मत उसमें नहीं थी। उसने मुझे जैसा माना, यदि मैं उतना बुरा होऊँ तो मारने लायक ही माना जाऊँगा। अब वह इस विषय में अधिक चिंता नहीं करेगा। यह किस्सा तो यहीं खत्म हुआ। मैं नहीं मानता कि वह अब दोबारा मुझे घायल करने का प्रयत्न करेगा। यदि मैंने उसे पुलिस के हाथों पकड़वाया होता तो वह मेरा शत्रु बन जाता। पर अब तो वह मेरा मित्र बनेगा।”



११. 'स्त्री का स्थान'

एक अन्य प्रसंग में स्त्रियों की स्थिति से संबंधित चर्चा चल रही थी, उसमें गाँधीजी ने कहा कि पश्चिम में स्त्री को जो स्थान मिला है उसकी अपेक्षा ऊँचा स्थान पूर्व में उसे दिया गया है।

मैंने कहा: 'यह बात मेरे गले नहीं उतरती। पूर्व ने ही इसे पुरुषों का ताबेदार बनाया है। वहाँ तो स्त्री के अपने व्यक्तिगत जीवन जैसा कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता।

गाँधीजी बोले, 'आप भूल रही हैं। पूर्व ने स्त्री को पूज्य माना है।'

मैं बोली, 'परन्तु पूर्व में मुझे यह पूजी जाती नहीं दिखती। मैं तो इन्हें किसी न किसी पुरुष की भोगवृत्ति को संतुष्ट करने में लगी देखती हूँ।'

गाँधीजी ने कहा, 'जीवन के महत्त्वपूर्ण विषयों में वह पुरुषों के समान और उससे बढ़ी-चढ़ी भी है। छोटी-छोटी बातों में कदाचित् वह पुरुष की सेवा करती होगी।'

मैंने पूछा: 'परन्तु पुरुष कुर्सी पर बैठकर खाये और स्त्री पीछे खड़ी रहे; ऐसा रिवाज हो तो, क्या कहा जा सकता है भला कि पुरुष स्त्री को अपने समान मानता है ?'

गाँधीजी ने सहज स्मित के साथ कहा: 'यह सच है कि पुरुष उस आदर्श तक नहीं पहुँचे हैं। परन्तु लगभग सभी पुरुषों के मन में इसका भान भी रहता ही है।'



उमाशंकर जोशी

१२. 'बचत पर नज़र'

यरवडा जेल में गाँधीजी के कपड़े उनके साथी शंकरलालभाई धोते थे। एक दिन गाँधीजी ने धीरे से उनसे कहा, 'कपड़े धोने का काम रहने दो, मैं धो लूँगा।'

शंकरलालभाई ने पूछा: 'कपड़े ठीक नहीं धुल रहे हैं क्या ?' गाँधीजी ने संतोष से कहा: 'कपड़े तो बराबर धुलते हैं, पर मुझे लगता है कि साबुन कुछ ज़्यादा लग जाता है। मैं इतना साबुन इससे दुगुने दिन चला लूँ।'

शंकरलालभाई ने कहा: 'अब किफ़ायत से इस्तेमाल करूँगा।' उन्हें लगता था कि साबुन भले ही थोड़ा ज़्यादा लगे पर कपड़ा बराबर स्वच्छ होना चाहिए। अब उन्हें मितव्ययिता की दृष्टि मिली।

एक सुबह गाँधीजी कहने लगे : 'शंकरलाल, आज सिगड़ी नहीं सुलगाना। पानी गरम नहीं करना है।'

शंकरलालभाई ने पूछा: 'क्यों ?'

गाँधीजी ने कहा: 'रात को कमरे में लालटेन रहती है। मुझे विचार आया कि उस पर पानी भर कर मग रखें तो सुबह तक पानी गर्म हो जायेगा। प्रयोग सफल हुआ। पानी मेरे पीने जितना गर्म हो गया है।'

शंकरलालभाई को बुरा लगा। वे बोले, 'भोर में ज़ल्दी उठकर सिगड़ी सुलगाने में मुझे श्रम पड़ रहा होगा, यह मान कर तो आप ऐसा नहीं कर रहे हैं ना ? मुझे लगता है मैं आपको संतोष प्रदान नहीं कर सकता।'

गाँधीजी ने कहा : 'आप तो अच्छी तरह तैयार करते रहे हैं। पर यह तो एक प्रयोग करके देखा कि इस तरह सुलगते लालटेन पर पानी गर्म कर लें तो कैसा रहे ? इतना कोयला बच गया। इसमें बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं है।'



१३. 'राजा के अतिथि'

१९३१ में गोलमेज परिषद में शामिल होने बापू लंदन गये थे। एक दिन राजा पंचम जॉर्ज ने सभी सदस्यों के लिए सांध्य-भोज का आयोजन किया था। हिन्दुस्तान के वज़ीर सर सेमुअल होर गाँधीजी को निमंत्रित करने के बारे में चिंतित थे। पहला तो यह कि राजा ऐसे बागी से भेंट करेंगे ? दूसरा, भेंट करे तो भी गाँधीजी की वेशभूषा समारंभ के अनुरूप नहीं होगी। उन्होंने राजा से बात की तो राजा ने पहले तो क्रोधित होकर कहा: 'क्या ? मेरे वफ़ादार अधिकारियों पर हमला करने के इसके कुकृत्य के बाद भी, इस बागी फ़कीर को अपने महल में बुलाऊँ ?' थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर से 'खुले घुटने वाले और योग्य लिबास रहित छोटे आदमी' के प्रति अपनी अरुचि जतायी। परंतु अंत में तय हुआ कि पहनावे के बारे में कोई शर्त रखे बिना गाँधीजी को निमंत्रित किया जाय।

समारंभ में उचित समय पर राजा के समक्ष गाँधीजी को लाने का काम वज़ीर ने स्वयं अपने ज़िम्मे रखा। उन्होंने गाँधीजी को राजा से मिलवाया और परिचय करवाया। वह क्षण बहुत कठिन था। गाँधीजी की बगावत भूलना राजा के लिए संभव न था। पिछला पूरा वर्ष गाँधीजी ने हिन्दुस्तान में प्रचंड सत्याग्रह चलाया था। परन्तु दोनों एक बार बातें करने लगे तो बड़ी सरलता से उनकी गाड़ी चलने लगी। राजा सहृदय मनुष्य थे और गाँधीजी की व्यावहारिकता का पूछना ही क्या ! बातचीत के दरमियान एक बार राजा की दृष्टि गाँधीजी के घुटनों पर क्षण-भर के लिए रुकी, तब वज़ीर के सीने में धड़कन बढ़ गई।

बातचीत पूरी होने आयी। पंचम जॉर्ज अपने दायित्व को समझनेवाले राजा थे। विदाई के समय उन्होंने गाँधीजी को चेतावनी दी : 'स्मरण रखिए मि. गाँधी, अपने साम्राज्य पर कोई आक्रमण मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा।'

हिंद के वज़ीर की साँस अटक गई कि अब टक्कर होगी क्या ?

परन्तु गाँधीजी की सज्जनता ने बात बना ली। उन्होंने उत्तर दिया: 'आप जैसे माननीय का आतिथ्य अनुभव करने के पश्चात् मुझे आप के साथ राजनैतिक विवाद में नहीं पड़ना चाहिए।'



और मित्रता के वातावरण में दोनों ने एक दूसरे से विदा ली।

हिंद के वज़ीर ने छुटकारे की साँस ली।



१४. 'किस मुँह से यह पी सकता हूँ ?'

१९४७ की गर्मियों में बिहार में फैले क्राँमी दावानल को शांत करने के लिए बापू कार्यरत थे। वहाँ से दिल्ली आये। उन दिनों उनकी खुराक बहुत कम हो गई थी।

एक सुबह मनुबहन ने भोजन के समय एक प्याला आमरस दिया। बापू ने कहा, मालूम करके, पहले मुझे बताओ कि आम का दाम क्या है?

मनुबहन ने सोचा कि बापू विनोद कर रहे हैं। वह तो ज़रूरी लेखों की नक़ल करने में जुट गई। थोड़ी देर बाद देखा तो बापू ने रस नहीं लिया था। उसने उन्हें ग्रहण करने के लिए कहा।

बापू बोले : मैं तो समझ रहा था कि तू आम की क्रीमत पूछकर ही आयेगी। आम भेंट में मिला हो, तो भी तुझे उसका दाम जानने के पश्चात् ही मुझे खाने देना चाहिए। यह तो तूने किया नहीं और पूछने पर भी जवाब नहीं दिया। आम का फल, मैंने सुना है कि एक नग दस आने में मिलता है। यह फल खाये बिना मैं जी सकता हूँ। ऐसे फल लेने से मेरे शरीर में लहू बढ़ता नहीं उल्टे घटता है। ऐसी असह्य महँगाई और तकलीफ़ के समय में तूने मुझे चार आम के रस से अच्छा-खासा भरा गिलास दिया अर्थात् अढ़ाई रुपये का वह प्याला हुआ। भला मैं किस मुँह से यह पी सकता हूँ ?

उसी समय बापू के दर्शन करने एक-दो निराश्रित बहनें अपने बालकों के साथ आईं। बापू ने तुरंत दो कटोरियों में दोनों बालकों को रस पीने के लिए दे दिया। उन्होंने आश्चर्य की साँस ली। मनुबहन से कहने लगे : ईश्वर मेरा सहायक बना हुआ है – इसका यह साक्षात् उदाहरण है। प्रभु ने इन बालकों को भिजवाया और वह भी जैसे बालकों की मैं इच्छा रखता था वैसे ही बालक आये। ज़रा देख तो तू ईश्वर की कैसी कृपा है।'



१५. 'गरीबों की बा'

एक बार बापू सेवाग्राम में थे, तब बा दूसरे शहर से आने वाली थीं। सब पूछने लगे, बा कब आयेंगी ? किस गाड़ी से आयेंगी ?

सूरत की ओर गई हुई थीं, वहाँ से मुंबई पहुँच कर, वर्धा आ सकती थीं। परन्तु यह रास्ता लंबा और महँगा था। सूरत जाकर 'ताप्ती वैली' ट्रेन में भुसावल के रास्ते से आने पर खर्च कम लगेगा।

एक बहन विशेष रूप से बा से मिलने के लिए रुकी हुई थी। मुंबई की ओर से आनेवाली गाड़ी का समय हो गया था, अतः उन्होंने पूछा, 'बा अभी आ जायेंगी ना ?'

बापू ने कहा, 'यदि वे धनवानों की बा होंगी तो अभी आ जायेंगी और गरीबों को बा होंगी तो सूरत होकर 'ताप्ती वैली' से सुबह आयेंगी।'

और बा, गरीबों की बा, सचमुच दूसरे दिन सुबह आयीं।

इस अनोखे दम्पती के मित्र हॉरेस एलेक्जेंडर ने अपनी टिप्पणी देते हुए कहा कि बा और बापू एक घर में हों, पास-पास के कमरे में हों, एक दूसरे से खास कुछ वोलत नहीं तो भी हमें सदैव लगता रहता है कि दोनों एक-दूसरे को बड़ी गहराई से समझते हैं।



१६. 'अनमोल अधेला'

खादी के काम के लिए चंदा इकट्ठा करने गाँधीजी उड़ीसा की यात्रा पर थे।

एक सभा में गाँधीजी बैठे थे कि एक अत्यन्त वृद्धा बहन आई। उसके बाल श्वेत पूनी जैसे थे, कमर झुकी थी। स्वयंसेवकों से झगड़ कर वह गाँधीजी के पास आ पहुँची थी।

'आपके दर्शन करना है' – कहकर उसने गाँधीजी के चरणों में गिरकर नमस्कार किया। अपनी अंटी से एक अधेला निकालकर गाँधीजी के चरणों में धरा। तत्पश्चात् शांत-भाव से लौट गई।

वृद्धा द्वारा रखा गया अधेला गाँधीजी ने तत्परता से उठाया और अपनी टेंट में खोंस लिया। सारा हिसाब रखनेवाले सेठ जमनालाल बजाज पास ही बैठे थे, बोले : 'यह अधेला मुझे दे दीजिए।' गाँधीजी ने कहा, 'यह आपको नहीं दिया जा सकेगा।

जमनालालजी : 'चरखा-संघ का हज़ारों का चेक मैं लेता हूँ और इस अधेले के लिए आप मेरा विश्वास नहीं कर रहे हैं ?'

गाँधीजी बोले : 'यह अधेला तो अनमोल है। आदमी के पास लाखों हों उसमें से हज़ार दे दे तो कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु इस वृद्ध, गरीब फटेहाल बहन ने यह अधेला दिया है, उसका हृदय कितना उदार होगा ! उसका यह अधेला तो करोड़ों से भी बढ़कर है।



१७. 'पहले मेरा सिर फोड़ो !'

नागपुर में महासभा का अधिवेशन चल रहा था। गाँधीजी अपनी झोंपड़ी में वल्लभभाई आदि के साथ बातें कर रहे थे। झोंपड़ी के बाहर एक मारवाड़ी पति-पत्नी दर्शन करने हेतु अंदर आना चाहते थे। स्वयंसेवकों से उनकी झकझक हो रही थी। वल्लभभाई ने उन्हें अंदर आने देने के लिए कहा।

तभी एक दूसरा स्वयंसेवक दौड़ता हुआ आया और बंगाल-छावनी में उपद्रव होने का समाचार लाया। गाँधीजी तेज़ी से उठकर खड़े हो गये। ताज़ी हजामत की हुई थी। सूर्य की किरणों से उनका माथा चमक रहा था। नज़दीक पड़ी हुई एक चादर कंधे पर डाल कर वे चल पड़े। बड़ी मुश्किल से महात्माजी के दर्शन की आस पूरी कर पानेवाली महिला उन्हें जाते देख बोली, 'आप रुकिए, मुझे बात करनी है।' इतना कह उसने महात्माजी के चादर का किनारा पकड़ लिया। महात्माजी तो जाने की ज़ल्दी में थे, चादर वहीं छोड़ आगे बढ़ गये। वल्लभभाई मज़ाक में बोल उठे: 'ऐसे प्रसंग में तो वे अपनी धोती भी फेंक कर दौड़ते हैं।'

कड़कड़ाती सर्दी में गाँधीजी बंगाल-छावनी में पहुँच गये। वहाँ तो अद्भुत दृश्य था। गाँधीजी के असहयोग के प्रस्ताव का विरोध करने दासबाबू कलकत्ता से लगभग २५० प्रतिनिधियों को अपने खर्च पर लाये थे। श्री बनर्जी गाँधीजी के प्रस्ताव के पक्ष में थे। दोनों के कार्यकर्ताओं के बीच झड़प हुई थी।

गाँधीजी उस टोली में जाकर एक स्टूल पर खड़े हो गये। बंगालियों के अतिरिक्त अन्य सभी को पहले वहाँ से चले जाने के लिए कहा। फिर बंगालियों से बोले : 'तकरार का मूल मैं हूँ। सिर फोड़ना है तो पहले मेरा सिर फोड़ो।'

कुछ देर में सभी शांत हो गये। दासबाबू के साथ उन्होंने वही बात की। परिणाम यह हुआ कि दासबाबू जो उनके विरुद्ध थे, के द्वारा ही प्रस्ताव प्रस्तुत करवाया।



१८. 'दोनों चुपचाप बैठे रहे'

बापू यरवडा जेल में थे तब बा उनसे मुलाकात करने आईं। निश्चित समय पर जेल-अधिकारी की उपस्थिति में उनकी मुलाकात का बंदोबस्त किया गया।

बा-बापू एक-दूसरे के हाल-चाल पूछने लगे, तो जेल अधिकारी को लगा कि इन पूज्य व्यक्तियों के मिलने के समय यदि मैं यहीं खड़ा रहूँगा तो वे खुलकर बातचीत नहीं कर सकेंगे। अतः थोड़ा इधर-उधर हो जाऊँ। यह सोचकर वे दूर तक टहलने चले गये।

जेल में मुलाकात का समय था, आधा घंटा। समय पूरा हुआ तो जेल अधिकारी हँसते हुए वापस लौटे। उन्होंने बापू से पूछा : 'आपकी बातचीत अब तक पूरी हो गई होगी।'

गाँधीजी : 'बातचीत ? आपके समक्ष एक-दूसरे का हाल-चाल पूछा, बस वही। आपके जाने के बाद हम दोनों ने एक शब्द तक का उच्चारण नहीं किया।'

जेल अधिकारी : 'ऐसा क्यों, बापू ?'

गाँधीजी : 'आप जेल के नियम तो जानते हैं। जेल अधिकारी की गैरहाज़िरी में जेल का कैदी मुलाकाती के साथ बात नहीं कर सकता। आप बैठे थे तब तक खबर पूछी, पर आपके जाने के बाद हम दोनों शांत बैठे रहे हैं।'



१९. 'महात्मा' न कहो'

मुंबई के एक्सलिसियर थियेटर में एक सभा का आयोजन, मलबार संकट निवारण के हेतु किया गया था। गाँधीजी भी उस सभा में उपस्थित थे। श्री जयकर का भाषण हुआ और गाँधीजी को ज्ञात हो गया कि सभा उनका सम्मान करने के लिए भी रखी गयी है। विभिन्न राजनीतिक दलों तथा विशिष्ट जातियों का प्रतिनिधित्व करते हुए, सज्जन एक के बाद एक खड़े होकर गाँधीजी के प्रति अपना स्नेह-आदर प्रकट करने लगे। श्री जमनादास द्वारिकादास की बारी आई। वे भी गाँधीजी के प्रति आदर और प्रेम-भाव में किसी से पीछे नहीं थे, इसी बारे में वे कह रहे थे कि सभा में से किसी ने आवाज़ दी : 'महात्माजी कहिए, गाँधीजी नहीं।'

जमनादासजी ने सरल भाव से समझाया कि गाँधीजी को महात्मा शब्द रुचता नहीं है, यह उन्होंने स्वयं मुझे बताया है। अतः मैं उनका दिल दुखाना नहीं चाहता।

उन्होंने अपना भाषण आगे शुरू किया, फिर पुकार आयी। दोबारा उन्होंने खुलासा किया।

अन्य सभी के भाषण हुए। अंत में गाँधीजी के बोलने का समय आया। उन्होंने बिंधे हृदय से कहा, 'दो-तीन भाइयों ने जमनादासभाई तथा सभा के प्रति अविनय किया है। भाई जमनादास ने जो कहा वह सच है। 'महात्मा' के नाम से अनेक कपट के काम हुए हैं। मुझे 'महात्मा' शब्द से बदबू आती है। जब कोई आग्रह करता है कि सभी मुझे 'महात्मा' कहें तब तो मैं बहुत बेचैन हो जाता हूँ। जितना मैं 'महात्मा' शब्द के उपयोग की मनाही करता हूँ उतना ही अधिक उपयोग होता है। यह मैं जानता हूँ, इसलिए केवल जीभ से कहकर बैठ जाना मेरे लिए काफ़ी नहीं होता। आश्रम में तो मेरे या किसी और के समक्ष इस शब्द का प्रयोग न करने की आज्ञा है। भाई जमनादास ने तो मेरे लिए बड़े प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग किया, पर यदि उन्होंने कहा होता कि गाँधी जैसा दुखकारक आदमी कोई नहीं है, तो भी उन्हें रोकने का किसी को अधिकार नहीं।'



उनके इतना कहते ही सामने की गैलरी में से एक भाई खड़े हुए, हाथ जोड़ प्रणाम करके सिर झुकाया। गांधीजी ने कहा, 'इलना काफ़ी है। लेकिन अभी और दो-एक भाई हैं, वे माँफ़ी नहीं माँगेंगे ?

अन्य दो व्यक्ति उठे और माँफ़ी माँगी। गाँधीजी आगे बोलने लगे। तब तक एक और भाई भी खड़े हुए और माँफ़ी माँगी।

गाँधीजी ने शांति का अनुभव किया, बोले : 'आपने जमनादासभाई का अनादर किया, इससे मुझे अतिशय दुख हुआ। लेकिन आपने विनयपूर्वक क्षमा माँग ली तो यह दुख सुखरूप बन गया। इन माँफ़ी माँगनेवालों का तो भला होगा ही, पर हम सब जो इस दृश्य के साक्षी हैं, का भी भला होगा।'



काका कालेलकर

२०. 'गीता कंठस्थ की'

सम्पूर्ण 'भगवद्गीता' कंठस्थ करने का चाव बापू के मन में दक्षिण अफ्रिका से ही था। वहाँ सुबह दातुन करते समय दीवार पर 'गीता' के दो-तीन श्लोक लिख रखते थे और याद करते थे।

यरवडा में अच्छी सुविधा और फुरसत देखकर बापू ने शुद्ध उच्चारण के साथ 'गीता' के श्लोक कंठस्थ करने का निश्चय किया। फिर मुझे बोले, 'काका ! 'गीता' के श्लोकों का उच्चारण मुझे सुधारना है। आश्रम के बालकों को पढ़ाते हुए मैंने तुम्हें देखा है। तुम्हारे उच्चारण पर मैं मुग्ध हूँ। जहाँ मेरा उच्चारण ग़लत हो वहाँ मुझे टोकना। मैं बार-बार बोलकर सुधार लूँगा। मैं 'बड़ा' हूँ, 'महात्मा' हूँ। मुझे भला मेरी ग़लती कैसे बतायी जाये, - यह सब सोचकर यदि मेरे उच्चारण में कमी रहने दोगे तो यह पाप तुम पर होगा। मुझे विद्यार्थी समझो और एक भी भूल रहने तक सुधारते जाओ।'

हमारी गाड़ी ठीक चलने लगी। जहाँ कोई खामी बताऊँ, वहीं पुस्तक में पेंसिल से महीन निशान लगाते और उस हिस्से को बार-बार सुनते। एक ही पंक्ति या शब्द को अनेक बार बोलने में मुझे कभी ऊब नहीं होती। क्योंकि मैं जानता हूँ कि बार-बार सुनाकर कान भर देना ही शुद्ध उच्चारण सिखाने का प्राकृतिक नियम है। बालक इसी प्रकार से उच्चारण और उसके साथ लहजा भी सीखते हैं।



२१. 'चालीस हज़ार वापस लौटाए'

आश्रम के प्रारम्भिक दिनों की बात है। गिरजाशंकर जोशी अक्सर वहाँ आया करते थे। एक दिन बापू ने उनसे कहा, 'आप नियमित आते हैं तो आश्रम के बालकों को संस्कृत क्यों न पढ़ा दें ?' अतः वे बालकों को संस्कृत पढ़ाने लगे।

वे फलित ज्योतिषी में अच्छी पैठ रखते थे। अहमदाबाद के बहुत-से धनवानों को उनकी इस विद्या के प्रति विश्वास-भाव था। सोमालाल नामक एक पैसेवाले के मन में बापू को कुछ दान देने की भावना जगी तो जोशी के साथ विद्यालय का मकान बनवाने के लिए चालीस हज़ार रुपये भेजे। उन दिनों हम अहाते में तंबू बनाकर और चटाई की झोंपड़ी में रहते थे। मकान बनवाने का विचार कर रहे थे कि उससे पहले अहमदाबाद में इन्फ्लुएन्जा का प्रकोप फैल गया। रोज़ सौ-दो सौ की मौत होने लगी और चारों ओर हाहाकार मच गया। बापू ने जोशी से कहा, 'इस वर्ष तो हम मकान नहीं बनवायेंगे और विद्यालय का मकान भी नहीं बन सकेगा इसलिए सोमालालभाई के दिये पैसे वापस ले जाइए।' जोशी बोले, 'उन्होंने पैसे वापस नहीं माँगे हैं।' बापू ने कहा, 'उससे क्या होता है ? जिस काम के लिए दिए वह काम अभी होनेवाला नहीं, तो फिर यह पैसा किसलिए संभालें ?' जोशी फिर बोले, 'अभी नहीं तो भविष्य में कभी, छात्रालय बनवायेंगे तो सही ? उस वक़्त पैसा काम आ जायेगा।' बापू का उत्तर था, 'हाँ, परन्तु जब बनवाने का प्रसंग आयेगा तब कोई पैसा देने वाला भी मिल जायेगा।' जोशी ने जाकर सोमालालभाई से सारी बात बताई। उन्होंने कहा, 'मैंने दिया सो दिया, वापस नहीं लूँगा।'



२२. 'अस्पृश्यता की शर्त पर तो....'

१९२१ की बात है। अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई। विद्यापीठ की प्रबंध-समिति (सेनेट) की बैठक में मि. एन्ड्रूज़ भी शामिल हुए। उन्होंने प्रश्न उठाया, 'विद्यापीठ में हरिजनों को भी प्रवेश मिलेगा ना?' मैंने तुरंत उत्तर दिया कि हाँ, हरिजनों को अवश्य प्रवेश मिलेगा। परंतु हमारी प्रबंध-समिति में कुछ ऐसे लोग भी थे जो इस मामले में अपनी अलग राय रखते थे, जिन्हें यह बात मंजूर नहीं थी। वे अपनी-अपनी परेशानियाँ ज़ाहिर करने लगे। उस दिन यह प्रश्न अनिर्णित रह गया। अंत में बापू से पूछा गया तो उनका उत्तर मेरे जवाब के समर्थन में था।

समस्त गुजरात में इस बात की चर्चा छिड़ गई। मुंबई के कुछ धनिक वैष्णवों ने बापू के पास आकर कहा 'राष्ट्रीय शिक्षा का कार्य धर्म का कार्य है। इस कार्य के लिए आप जितना कहें उतना धन हम प्रदान करेंगे। परंतु हरिजनों के सवाल को आप छोड़ दीजिए। यह बात हमारे गले नहीं उतरती।'

वे लोग पाँच-सात लाख रुपये प्रदान करने की मंशा लेकर आये थे। बापू ने उनसे कहा, 'विद्यापीठ के फंड की बात तो दूर है, अस्पृश्यता बनाये रखने की शर्त पर मुझे कल कोई हिन्दुस्तान का स्वराज्य दे तो मैं वह भी न लूँ।'



२३. 'धर्मयुद्ध का नियम'

गाँधीजी ने छोटी-छोटी लड़ाइयाँ लड़ने में ही जींदगी बिताई है। कहा जा सकता है कि लड़ने के लिए ही उनका जन्म हुआ है। लेकिन उनका एक भी व्यक्ति के साथ बैर नहीं रहा।

दक्षिण अफ्रिका में उनके विरुद्ध विचार रखनेवाले कुछ हिन्दुस्तानी लोगों का एक मंडल जनरल स्मट्स से मिलने गया। अपनी बात प्रभावी ढंग से कहने की भाषा का ज्ञान और कौशल उनमें से किसी में नहीं था। उन लोगों ने गाँधीजी से ही विनती की कि आप हमारी खातिर इतना काम कर दीजिए। गाँधीजी ने सहर्ष स्वीकार किया और उन लोगों को पूर्ण संतुष्ट भी किया।

इस प्रसंग में गाँधीजी का अजातशत्रु रूप जितना स्पष्ट हुआ है उतना ही विरोधी के इस गुण की कद्र करके उस पर संपूर्ण विश्वास सौंपने वाले उन भाइयों की श्रद्धा भी उभर कर दिखाई पड़ती है। अपनी निष्कपट खेल-भावना से गाँधीजी ने कितने ही शत्रुओं को मित्र बनाया है, कितनों को सज्जनता का पाठ पढ़ाया है और जहाँ द्वेष तथा छलकपट का राज्य था वहाँ धर्मयुद्ध के नियमों को मान्यता दिलवाई है।



२४. 'कड़ी सज़ा'

एक बार मैं मुश्किल में पड़ गया। बापू की खुराक हो या अन्य कुछ हो, सब हिसाब के अनुसार चलता। बाज़ार से एक सेर किशमिश आयी। बापू बोले, 'यह आठ दिन चलनी चाहिए। किशमिश गिन लो और उस संख्या के आठ समान भाग करने से रोज़ कितना लेना है मालूम हो जायेगा।' मुझे जैसा ख्याल है कि रोज़ बीस किशमिश देनी थी। मुझे लगा कि यह खुराक कम पड़ेगी, परन्तु इस बारे में बापू से चर्चा करके कोई लाभ नहीं होगा यह भी मैं जानता था। इसलिए मैं प्रतिदिन चुन-चुन कर बड़ी-बड़ी बीस किशमिश देने लगा। कुछ दिनों में बड़ी किशमिश समाप्त हो गई। अब अधिक देने के लिए अनुमति लेनी पड़ी। मैंने कहा, 'बड़ी-बड़ी ख़त्म हो गई अब छोटी-छोटी रही हैं, जिनसे पूरा पोषण नहीं मिल सकेगा। अतः अधिक देने दीजिए।' वे नाराज होंगे, कुछ डाँटेंगे – इसकी अपेक्षा और तैयारी तो थी परन्तु मामला अपेक्षा से अधिक महँगा पड़ा।

'ऐसा क्यों किया ?' कहकर उलाहना दिया और बोले, 'अब मुझे अपना यह काम तुमसे वापस ले लेना होगा।'

जेल कोई आश्रम तो था नहीं कि एक के स्थान पर दूसरे आदमी से दौड़कर काम ले सकें। मैं न करूँ तो बापू स्वयं ही सब कुछ करेंगे और मैं बैठा देखता रहूँगा। मैं दुर्बल मन का नहीं हूँ लेकिन उस समय मुझसे रहा न गया और मैं रो पड़ा। बापू ज़रा नरम पड़े और उनका काम मेरे ही हाथ में रहा। बाक़ी के दिनों में वही छोटी-छोटी परन्तु बीस ही किशमिश तैयार करके उन्हें देनी पड़ी।



२५. 'पापी का भी प्रतिनिधि'

गाँधीजी के सत्याग्रह का एक व्याकरण था। उस व्याकरण के नियमों का पालन न करते हुए यदि सत्याग्रह किया जाय तो वह दुराग्रह बन जाता है, ज़बरदस्ती का एक प्रकार बनता है। पिछले बीस वर्षों में (१९५० के पश्चात्) किसी ने भी शुद्ध सत्याग्रह का उदाहरण लोगों के सम्मुख नहीं रखा है। परिणामस्वरूप सत्याग्रह का स्थान हटाग्रह ने ले लिया है। हटाग्रह या तो वैधानिक सरकार को खा जायेगा अथवा सर्वत्र गुंडों का राज्य शुरू कर देगा।

चौरी-चौरा हत्याकांड को गाँधीजी ने राष्ट्रीय पाप माना और स्वयं प्रायश्चित्त स्वरूप उपवास किया। तब कुछ लोग गाँधीजी के पास जाकर कहने लगे कि, 'आप अहिंसा के पुजारी हैं, यह सारी दुनिया जानती है। वहाँ जिन्होंने हिंसा की, उनके साथ आपका दूर का संबंध तक जोड़ने की कोई हिम्मत नहीं करेगा फिर आप उस पाप के लिए स्वयं को ज़िम्मेदार क्यों मान रहे हैं?'

गाँधीजीने उत्तर दिया, 'मैं स्वयं को मन से भारत का प्रतिनिधि मानता हूँ। समस्त भारत का मैं सेवक प्रतिनिधि हूँ। भारत के पुण्यवान और पापी सभी का मैं प्रतिनिधि हूँ। इस देश के किसी भी व्यक्ति ने इस प्रकार हिंसा की तो उसकी ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर ही आती है। समग्र भारत की ओर से मैं पश्चात्ताप न करूँ तो मेरा प्रतिनिधित्व लज्जित होगा।'

इसीलिए राष्ट्र न उन्हें राष्ट्रपिता कहा।



२६. 'माँ-जैसा वात्सल्य'

बापू विलायत से (दक्षिण अफ्रिका से विलायत होकर) भारत आए तब मैं शांतिनिकेतन में था। बापू के फिनिक्स आश्रम से आयी मंडली भी वहाँ अतिथि के रूप में रह रही थी। समाचार-पत्र पढ़ते रहने के कारण दक्षिण अफ्रिका के अपने लोगों का ताज़ा इतिहास मैं जानता था। गाँधीजी के फिनिक्स आश्रम के बारे में भी सुना था। संभव है कि आश्रमवासियों ने भी मेरा नाम सुना हो। मैं इस फिनिक्स मंडली में लगभग मिल गया था। सुबह-शाम की प्रार्थना उनके साथ ही करने लगा और शाम का भोजन भी उनके साथ लेने लगा। आश्रमवासी प्रतिदिन सुबह उठकर एक घंटा मज़दूरी करते। शांतिनिकेतनवालों ने उन्हें एक काम सौंप दिया था। पास में एक छोटा तालाब था और उसके नज़दीक एक छोटा टीला था। टीले को खोदकर उस तालाब को भरने का यह काम था। हम दस-बीस लोग पूरे उत्साह से रोज़ यह काम करने जाते थे।

बापू शांतिनिकेतन आए उस रात हम देर तक उनसे बातें करते रहे। सुबह उठकर प्रार्थना करने के पश्चात् मज़दूरी के लिए गए। वहाँ से लौटकर देखा कि हमारे लिए फल आदि व्यवस्थित टुकड़े करके अलग-अलग थालियों में परोस कर रखे हुए हैं। हम सब तो काम पर गये थे, तब माँ की भाँति इतनी मेहनत किसने की होगी ? मैंने बापू से पूछा : 'यह सब किसने किया ? वे बोले, 'क्यों ? मैंने किया।' मैंने संकोचपूर्वक कहा : 'आपने यह क्या किया ? आप यह सब तैयार करके रखें और हम लोग बैठ कर खाएँ, यह मुझे ठीक नहीं लगता।' उन्होंने कहा, 'क्यों, इसमें क्या आपत्ति है ?' मैंने कहा, 'आप जैसों की सेवा लेने जितनी योग्यता तो होनी चाहिए ना।'

इसका बापू ने जो जवाब दिया उसके लिए मैं तैयार नहीं था। (उस समय मैं बापू से अंग्रेज़ी में ही बात करता था) मैंने कहा था 'वी मस्ट डिज़र्व इट' (हममें इतनी योग्यता होनी चाहिए)। यह सुनते ही अत्यन्त स्वाभाविकता से उन्होंने कहा 'व्हिच इज़ ए फैक्ट' (तुम्हारी बात सही है)। मैं उनकी ओर देखता ही रह गया। वे हँसते-हँसते बोले: "तुम लोग वहाँ काम पर गये



थे और नाश्ता करके फिर काम पर जाओगे। मुझे फुरसत थी, इसलिए मैंने तुम लोगों का समय बचाया। एक घंटा काम करने के पश्चात् ऐसा नाश्ता पाने की योग्यता तो आपने प्राप्त कर ली है ना ?”



२७. राजनैतिक कैदी

स्वराज्य के लिए नमक सत्याग्रह प्रारम्भ कर गाँधीजी १९३० में जेल गये। सरकार ने उन्हें यरवडा जेल में एक राजनैतिक कैदी के रूप में रखा। उस समय उनके साथ रहने के लिए सरकार ने मुझे चुना और मुझे साबरमती जेल से यरवडा जेल भेज दिया गया। तब गाँधीजी के साथ मैं पाँच-सवा पाँच माह रहा हूँगा। इस आंदोलन के समय गाँधीजी आठ मास यरवडा जेल में रहे। सरकार से अनुकूलता न मिलने पर गाँधीजी ने व्यक्तिगत मुलाक़ातें बंद कर दीं और हर सप्ताह लोगों को पत्र लिखना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उन्होंने सैकड़ों पत्र भेजे।

लेकिन गाँधीजी की चित्तवृत्ति सोलहों आने जुड़ी रहती थी उनके कातने के कार्य में तथा तकली, चरखा या पींजने आदि में निरन्तर सुधारने के प्रयोगों में। जब वे एकाग्र होकर चरखा चलाते थे तो उनके कातने का तालबद्ध स्वर ऐसा मधुर एवं भव्य लगता था मानो अनुष्टुप छंद में लिखे महाभारत के श्लोक सुन रहे हों।

उन दिनों जेल में बैठे-बैठे उन्होंने खपरैल के टुकड़े अथवा घड़ों की ठीकरियों और बाँस की सलाइयों से कितनी ही तकलियाँ स्वयं बनायीं। जीवन-चक्र, गांडीव, बारडोली चक्र, किसान का चरखा आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के चरखे उनके पास जमा हो गये थे। गाँधीजी ने प्रत्येक चरखे की खामी और खूबी जाँची। अंत में उन्होंने एक सुंदर चरखा ढूँढ़ निकाला जिसे आज यरवडा चक्र का नाम मिला है।

जेल में पहुँचते ही उन्होंने धुनकी (धुनने का यंत्र) मँगवायी और अपने कमरे की छत से लटकाकर रुई धुनना और पूनी तैयार करने का काम बड़े व्यवस्थित तरीके से करने लगे। इस प्रकार तकली और चरखा बनाने से लेकर रुई धुनने, पूनी बनाने, सूत कातने, उसका दर्जा सुधारने तथा टोपियाँ सीने तक के विविध कार्य उन्होंने पूर्ण एकाग्रता से किए।

साथ ही जेल में बैठे-बैठे हिंदुस्तान के असंख्य लोगों तथा उनके परिवार की चिंता भी बापू करते थे। जितने पत्र आते, उतने सभी लोगों के व्यक्तिगत और पारिवारिक प्रश्नों पर गहरे चिंतन द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आरोग्य का एक साथ विचार कर, अपनी सलाह देते।



२८. 'बढ़िया खिलाड़ी'

गाँधीजी को कैसे-कैसे लोग सहकारी के रूप में मिले, परन्तु उन्होंने कभी फ़रियाद नहीं की। ताश का उत्तम खिलाड़ी हाथ में जो पत्ते आएँ उन्हीं से खेलता है, खराब पत्तों की शिकायत नहीं करता। वह कहता है कि, पत्ते चाहे जैसे मिलें, मैं तो उन्हें ही लेकर खेलता रहूँगा, खेल छोड़ूँगा नहीं।

अपने पूरे जीवन में बापू ने कभी शिकायत नहीं की कि भगवान ने मुझे ऐसे साथी क्यों दिए अथवा ऐसा देश क्यों दिया ? जो कुछ भाग्य में आया, उसका उन्होंने योग्य और उत्तम उपयोग किया, ऐसी अद्भुत शक्ति थी उनमें। इतने अलग-अलग प्रकार के लोगों को संभालना, उनसे बड़े-बड़े काम करवाना और साथ ही कहीं भी सत्य के प्रति द्रोह न हो, इसका पूरा ख्याल रखकर सावधान रहना – यह कोई छोटी-मोटी सिद्धि नहीं है।



२९. 'तीन तप (युग) की स्वराज्य-सेवा'

जिस युग में हम रहते हैं वह युग हज़ारों वर्षों तक 'गाँधी-युग' के नाम से जाना जाएगा। मानवजाति को मनुष्यता की दीक्षा देनेवाले ऋषिमुनियों और पैगम्बरों की परम्परा के गाँधीजी ने अपने जीवन द्वारा मानवजाति को एक ऐसी नई प्रेरणा, श्रद्धा और दीक्षा प्रदान की है जिसे जीवन में उतारने, विकसित करने और आत्मसात् करने में मानवजाति को हज़ार वर्ष तक पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

१९१५ के प्रारम्भ में गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका से सदा के लिए हिंदुस्तान लौट आये। १९२० में उन्होंने समग्र देश के स्वराज्य आंदोलनों की लगाम अपने हाथों में ले ली और देश में एक ज़बरदस्त आंदोलन जगाया। ठीक दस वर्ष पश्चात् गाँधीजी ने लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का ध्येय स्वीकार किया। आखिरी फ़ैसला करने के लिए नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया और उसके बारह वर्ष बाद (१९४२ में) अंग्रेजों की हुकूमत को भारत छोड़कर जाने का नोटिस दे दिया। पाँच वर्ष की इस लड़ाई के अंत में भारत स्वतंत्र हुआ। 'बारह वर्ष का एक तप युग' के हिसाब से गाँधीजी की यह अद्भुत रोमहर्षक स्वराज्य-सेवा तीन तप तक चलती रही और फलीभूत हुई।

इन तीन तपों (युग) का इतिहास गाँधीजी जैसे अनेक राजपुरुषों के जीवन में, उनकी वाणी में और उनकी प्रवृत्तियों में तो प्रतिबिंबित हुआ ही है परन्तु इस काल के दौरान जिन छोटे-बड़े व्यक्तियों ने इनमें भाग लिया तथा इन समग्र घटनाओं और इनके पीछे की प्रेरणा का निरीक्षण किया, उनका कर्तव्य है कि वे अपने संस्मरण लिपिबद्ध करें।

परन्तु गाँधीजी का पूरा परिचय पाने के लिए विविध प्रकार की सामग्रियाँ अपेक्षित हैं। महादेवभाई की डायरी और साप्ताहिकों में लिखे उनके लेख तो गाँधीजी के जीवन का चरित्र उतारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहते ही हैं इसके साथ अन्य छोटे-बड़े प्रसंगों के बारे में भी विस्तार से जानकारी लोगों के सम्मुख आनी चाहिए।



३०. 'सत्यनिष्ठ की पूजा'

आश्रम की स्थापना के दिन थे। हम कोचरब के बंगले में रहते थे। अध्यापक कर्वे अपनी संस्था के लिए चंदा जमा करने अहमदाबाद आये हुए थे। वे बापू से मिलने आश्रम में आए। बापू ने समस्त आश्रमवासियों को एकत्रित किया और सभी से साष्टांग प्रणाम करने के लिए कहा। फिर समझाने लगे, "गोखलेजी जब दक्षिण अफ्रिका आये थे तब मैंने उनसे पूछा था कि आपके प्रांत में सत्यनिष्ठ व्यक्ति कौन-कौन हैं ? उन्होंने कहा था कि मैं अपना नाम तो दे नहीं सकता। मैं सत्य की राह पर चलने की कोशिश अवश्य करता हूँ, पर राजनीति के मसलों पर कभी-कभी मुँह से असत्य भी निकल जाता है। मैं जिन्हें जानता हूँ उनमें तीन व्यक्ति पूर्णतः सत्यवादी हैं : एक अध्यापक कर्वे, दूसरे शंकरराव लवाटे (जो शराबबंदी का कार्य करते थे) और तीसरे...."

बापू ने आगे कहा, "सत्यनिष्ठ लोग हमारे लिए तीर्थ रूप हैं। सत्याग्रह आश्रम की स्थापना सत्य की उपासना के लिए है। ऐसे आश्रम में किसी सत्यनिष्ठ मूर्ति के पधारने का दिन हमारे लिए मंगलकारी दिन है।"

कर्वे गद्गद् हो गये। कुछ उत्तर न दे सके। इतना ही कहा कि "गाँधीजी ! आपने मुझे लज्जित कर दिया। आपके समक्ष मेरी क्या विसात है ?"



३१. 'सनातनी लेकिन सुधारक'

बापू जब दक्षिण अफ्रिका से भारत आये तब उनके सिर पर चोटी नहीं थी, गले में जनेऊ नहीं था। हरिद्वार के कुंभ मेले में एक साधु ने उनसे इन दोनों वस्तुओं के लिए आग्रह किया। तब बापू ने सिर पर चोटी रखना स्वीकार किया और जनेऊ के लिए इन्कार कर दिया। इस विषय पर बताते हुए उन्होंने कहा:

“मुझे हिंदू समाज में बड़े-बड़े सुधार करने हैं, सुधार करने के लिए लड़ना है और वह भी एक निष्ठावान हिंदू की भाँति। प्रसंग आने पर इस समाज के विरुद्ध मुझे उपवास भी करना होगा। इसलिए जहाँ तक संभव हो सके मुझे समाज के साथ एकरूप होना है। समाज को यह लगना चाहिए कि मैं उनका ही हूँ। तभी मैं उनमें कुछ परिवर्तन करवा सकूँगा। जितनी बातों में उनके रिवाजों का पालन किया जा सके, उनके द्वारा उन्हें खुश रखना ही उत्तम नीति है। सिर पर चोटी रखने जैसी नगण्य वस्तु में सुधार करके समाज से अलग दिखने में भला क्या लाभ है ?”

जनेऊ के विषय में उन्होंने कहा :

“हिंदू समाज में यों ही अनेक दलबंदियाँ हैं जिससे समाज निर्बल होता जा रहा है। उसमें बिखराव आ रहा है। ऐसा भेदभाव है कि कुछ लोगों को जनेऊ ग्रहण करने का अधिकार है, कुछ को नहीं। तो हम अधिकार न प्राप्त लोगों के साथ ही मिल जाँएँ।”

गाँधीजी में बहुत बड़ा सुधारक छिपा था लेकिन गाँधीजी बनिया थे। इसी स्वभाव के कारण उन्होंने अपना समावेश सनातनियों में करवाया और कार्यक्रम स्वीकारा सुधारकों का।



३२. साबरमती से यरवडा

गाँधीजी नहीं चाहते थे कि मुझे साबरमती से हटाकर, उनके पास यरवडा लाया जाए। मुझसे पूछा जाता तो मैं भी कदाचित् नहीं चाहता परन्तु कारण अवश्य ही दूसरा होता।

आश्रम में प्रारम्भ से साथ रहने के बावजूद गाँधीजी की निजी सेवा करनेवाले छोटे-से वर्तुल में मैं कभी नहीं रहा। गाँधीजी की ज़रूरतों के बारे में मैं अधिक नहीं जानता और अपनी ज़िन्दगी में कोई भी काम मैंने व्यवस्थित तरीके से नहीं किया था, इसलिए मुझमें ऐसा विश्वास ही नहीं था कि मैं संतोषजनक रूप से उनकी सेवा कर पाऊँगा। गाँधीजी के साथ, जेल में अकेले-अकेले रहना, मेरी दृष्टि में ज़िन्दगी का एक अलभ्य लाभ होने पर भी मैं इस ख्याल से इन्कार कर देता कि मैं बापू को संतोष नहीं दे सकूँगा उल्टे उन्हें परेशान ही करूँगा।

बापू का विचार यह था कि काका को साबरमती रास आ गई है। अनेक राजनैतिक कैदियों को पढ़ाते हैं। इतना ही नहीं, अनेक विद्वानों की मदद से जेल में मानो एक व्यवस्थित महाविद्यालय चला रहे हैं। इस सेवा से उन्हें हटा लेना उचित नहीं होगा।

जेल के इंस्पेक्टर जनरल कर्नल डॉईल मुझसे परिचित थे। १९२३ में, जब मैं पहली बार साबरमती जेल में था तब, सेना के महकमे से जेल महकमे में वे सुपरिंटेंडेंट बन कर नये-नये आये थे। उस समय पाँच-सात महीने के परिचय में हमारे बीच किंचित सद्भाव भी जागृत हो गया था। इसलिए उन्होंने गाँधीजी की अनिच्छा के बावजूद मुझे चुना और यरवडा भिजवाने की व्यवस्था की।

मुझे युरोपियन वार्ड में, जहाँ बापू रहते थे, लाया गया। बापू को देखते ही मैं प्रसन्नता से पागल हो गया। भावाभिभूत होकर बिखरने की स्थिति में पहुँचता कि स्वयं को संभाल कर मैं उनके चरणों में झुक गया।



३३. 'जेल के दौरान अध्ययन'

१९२१ या १९२२ में बापू पहली बार भारत की जेल यरवडा – में कैद हुए थे। उस समय जेल के पुस्तकालय से बापू ने कितनी ही पुस्तकें मंगवाकर पढ़ी होंगी। उनमें से दो किताबें उन्हें विशेष पसंद आईं। 'सीकर्स आफ्टर गॉड' और किपलिंग की 'जंगलबुक'। इस समय उन्होंने मुझे ये पुस्तकें पढ़ने का सुझाव दिया। सद्भाग्य से जेल के पुस्तकालय में दोनों पुस्तकें मिल गईं। 'सीकर्स आफ्टर गॉड' में सेनेका, एपेक्टिस और मार्क्स ऑपरेलियस – तीन प्राचीन रोमनों के जीवन पर तीन दीर्घ निबन्ध थे। बापू की उस पहली जेल में पढ़ने के लिए मैंने अपनी किताब 'डिक्लाइन एन्ड फोल ऑफ द रोमन एम्पायर' उन्हें भिजवायी थी, बापू को याद रही। मुझसे कहने लगे 'सीकर्स आफ्टर गॉड' पुस्तक में मानो समग्र निबन्ध का निचोड़ आ गया है। यह पुस्तक तुम अवश्य पढ़ना।'

इन पाँच-छह महीनों के दौरान गाँधीजी के पास जो बहुत-सी पुस्तकें आईं, उनमें से दो का मुझे आज भी स्मरण है। एक थी एंटन सिंक्लेयर की 'गूज स्टेप' (Goose Step) जिसमें आज के अमरिका के सड़े हुए शिक्षण-तंत्र का सप्रमाण चित्र उपस्थित किया गया है।

एक प्रेरक पुस्तक पढ़ी, वह थी नेत्रहीन नेत्री हेलन केलर की उत्तर जीवन-कथा 'मिडस्ट्रीम' (Midstream)। बापू ने उसकी पूर्व जीवन की कथा 'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ' पढ़ी थी और उसकी बहुत प्रशंसा की थी। इसलिए जेल में पहले 'मिडस्ट्रीम' पढ़ी थी तो बाहर आने पर 'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ' (श्री मगनभाई देसाई ने इसका गुजराती अनुवाद 'अपंग की प्रतिभा' नाम से किया है।)

जेल में मेरी प्रमुख दिलचस्पी बापू की छोटी से छोटी सेवा करने और जब वे फुरसत में हों तो उनके साथ बातें करने में थी। उनके छोटे-मोटे काम में ही समय चला जाता और यही मेरा सबसे बड़ा आनन्द होता। बर्तन माँजना, बिस्तर बिछाना, उनकी वस्तुएँ उचित स्थान पर रखना, ज़रूरत की चीज़ झट निकाल कर देना, उनके लिए पकाना, उनकी कातने और पींजने की तैयारी करना, सूत के तारों को फिरकी पर उतार कर उसका हिसाब रखना, आने-जानेवाले पत्रों को पढ़कर छूट गई बातें याद दिलाना आदि कामों में दिन कैसे व्यतीत हो जाता था, पता भी नहीं चलता था।



३४. 'लँगड़ाते दत्तोबा'

यरवडा में मैंने प्रवेश किया और देखा कि बापू की सेवा के लिए सामान्य कैदियों में से दत्तोबा नामक एक महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण को रसोइए के रूप में रखा गया है। बेचारे के हाथ-पैर में संधिवात था। लँगड़ाते हुए चलता। बोलता कम, पर बताया हुआ काम बराबर करता। बापू के लिए नहाने का पानी गरम करना, उनके कपड़े धो देना, दूध गरम करना आदि ऐसे ही काम उसे सौंपे गये थे।

उसे लँगड़ाते देख बापू ने मेरी मार्फत उसकी समस्त स्थिति जान ली। दूसरे ही दिन सुबह उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर मार्टिन से बात की, पूछा : 'मैं इस पर नैसर्गिक उपचार आजमाना चाहता हूँ, यदि आपकी आज्ञा हो तो ?' जेल के डाक्टर ने छह माह तक उन्हें दवा दी थी, पर उससे कोई फ़ायदा नहीं हुआ। मेजर मार्टिन ने उत्तर दिया : 'हमें कोई आपत्ति नहीं है। आप अपना इलाज आजमा लीजिए।' बापू ने कहा, 'कुछ दिन इसे उपवास करवाऊँगा। फिर इसे अमुक खुराक ही दूँगा। मेरी खुराक में से ही आवश्यक वस्तु इसे दूँगा।' उसके जीवन में इतनी दिलचस्पी लेनेवाला कोई दत्तोबा को कभी नहीं मिला था। वह प्रसन्न हुआ, उससे भी ज़्यादा चकित हुआ। बापू रोज़ उसे बुलाते, तबियत के बारे में जानकारी लेते, खुराक में आवश्यक बदलाव करते। कुछ ही दिनों में उसकी तबियत में सुधार नज़र आने लगा। आख़िर में, बड़े कष्ट से लँगड़ाते हुए चलने वाला व्यक्ति, बिल्कुल स्वस्थ होकर दौड़ने लगा। फिर तो वह विशेष निष्ठा से बापू की सेवा करने लगा — भला इसमें आश्चर्य भी क्या ?

दत्तोबा का प्रकरण पूर्ण करने के लिए बाद की कुछ घटनाएँ भी यहाँ वर्णित कर देता हूँ। मैं छूटा, बापू छूटे, फिर दत्तोबा भी अपनी सजा पूरी करके छूटा।

बहुत दिनों बाद, जब बापू मुंबई में मणिभवन में थे और मैं मिलने गया था, तब एक दिन अचानक दत्तोबा बापू से मिलने आ पहुँचा। मैं उसे बापू के पास ले गया। बापू ने प्रेम से



पूछा, 'अभी क्या करते हो ?' उसने कहा, 'कोर्ट की तरफ एक छोटी-सी चाय-काफ़ी की दुकान खोली है।'

बापू काम में बहुत व्यस्त थे इसलिए उससे बोले, 'कल मिलने आना, ज़रूर आना। आज समय नहीं है।'

'हाँ' कहकर वह गया, पर आया ही नहीं। बापू को बहुत अफ़सोस हुआ, कहने लगे, 'उसकी दुकान के लिए मैं थोड़े पैसे देना चाहता था। ग़रीब आदमी मजदूरी करके पेट भरता है। दो-दो बार कैसे आ सकता है ? मुझे उसी समय पैसे देना चाहिए था।'

मैंने बहुत विचार किया, प्रयत्न किया। परन्तु मुंबई जैसे विशाल मानवसागर में दत्तोबा को ढूँढ़ निकालना क्या आसान था ?



३५. 'मराठी की शिक्षा'

प्रत्येक व्यक्ति को अपने पड़ोसी प्रान्त की भाषा जाननी चाहिए यह बापू का आग्रह होता ! जब मैं आश्रम के विद्यालय से जुड़ा तो बापूने पाठ्यक्रम में गुजराती, हिन्दी और संस्कृत के उपरांत मराठी भाषा भी एक विषय के रूप में रखी थी। एक बार उन्होंने कहा कि, 'दक्षिण अफ्रिका के गिरमिटियों की सेवा करने के लिए जब मैंने तमिल भाषा सीखी तो मुंबई इलाके में रहकर मराठी न जानूँ यह कैसे हो सकता है ?

मराठी सीखने का अवसर उन्हें यरवडा जेल में प्राप्त हुआ। उन्होंने मेरी सहायता से मराठी सीखने का मसूबा बनाया। मामूली कैदियों के लिए जैसे-तैसे रखे पुस्तकालय में मराठी की चार-पाँच पाठ्यपुस्तकें मिली। इन्हीं से कार्य प्रारम्भ हुआ। बापू पढ़ते जाते, मैं शब्दों का अर्थ बताता जाता। जहाँ समझ नहीं पाते, वहाँ पूछते। रोज़ कुछ मिनट ही मराठी को दिये जाते। एक दिन कविता के पाठ में, हस्ताक्षर के विषय में 'दासबोध' में आयी स्वामी रामदास की पंक्तियाँ थीं।

बापू को वे पंक्तियाँ इतनी अच्छी लगीं कि उन्होंने उन्हें लिख लिया, अनेक बार पढ़ा और जहाँ नहीं समझ में आया, वहाँ पूछा। इतने से भी संतोष नहीं हुआ और उस पूरे परिच्छेद को स्वयं ने उतार लिया। आश्रम के साप्ताहिक पत्र के साथ भेज दिया और सूचित किया कि आश्रमवासी इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें और कंठस्थ करें। बापू की अपनी हस्तलिपि अच्छी नहीं थी इसलिए अच्छे अक्षरों की उन्हें विशेष कद्र थी।

मराठी पढ़ते हुए एक दिन 'अल्फ्रेड दि ग्रेट' का पाठ आया। इंग्लैन्ड का यह प्राचीन राजा एक बार शत्रु से पराजित होकर अज्ञातवास में एक वृद्धा के पास रहा था। वृद्धा ने उसे रोटी सेंकने का काम सौंपा। अपनी चिंता में डूबे रहने के कारण अल्फ्रेड का ध्यान रोटी की ओर न रहा और रोटी जल गई। वृद्धा ने उसे इस लापरवाही के लिए खूब खरी-खोटी सुनाई।

यह पाठ हमने साथ-साथ पढ़ा। बाद में जब-जब मुझसे कोई ग़लती होती या कुछ भूल जाता या ध्यान न रहता तो बापू मुझे 'किंग अल्फ्रेड' कहते।



३६. 'बिदाई'

चाहे जितने उत्साह से कोई जेल गया हो पर जब जेल की अवधि समाप्त होती है और छूटने के दिन करीब आते हैं तो वह प्रसन्न होता है। लेकिन उस समय मेरी स्थिति बिल्कुल विपरीत थी। कैदी होने के कारण अपनी मर्ज़ी के अनुसार दीवार के पार नहीं जाया जा सकता, यह सही है। परन्तु बापू के साथ रहने का मौका मिलने के बाद बाहर जाने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। जेल के नियम और बंधन चाहे जितने कठोर हों पर गाँधीजी के साथ रहने का लाभ मिलने के कारण उन बंधनों की ओर ध्यान ही नहीं जाता था। उल्टे ऐसा प्रतीत होता था कि साढ़े पाँच महीने घर में रहने का सौभाग्य मिला था और अब घर से बाहर निकाल दिया जायेगा। इसलिए मैं दिन गिनता था, किसी आशा के साथ नहीं बल्कि एक प्रकार के विषाद के साथ। आखिर वह दिन भी आ गया। मेरा सारा सामान ठीक-ठाक करके जेलर के दफ़्तर भेज दिया गया। नहा-धोकर तैयार हुआ।

बापू ने प्रेम से कुछ सलाह दी : 'इतने दिनों के लगभग एकांत के बाद बाहर के कोलाहल में जाना होगा – मन उत्तेजित होगा। अतः बाहर जाते ही पहले दिन खुराक कम लेना अच्छा है। सबसे मुलाकात करोगे, पर इसलिए रात्रि-जागरण नहीं करना।'

मैंने नीचे झुककर प्रणाम किया। मेरी आँखें भीग गईं, यह स्वाभाविक था, पर बापू की आँखें भी नम हो आईं। उन्होंने मेरी पीठ पर ज़ोर से थप्पा मारा, जिसके बहाने मुझे प्रेम और आशीर्वाद दोनों प्रदान किया। विरह कया होता है यह मुझे उसी दिन अनुभव हुआ।

इतने दिनों तक लगातार बापू के साथ अकेले (अद्वितीय रूप में) रहने का लाभ न मुझे इससे पहले मिला था और न इसके बाद मिला। इसलिए यह सहवास मेरे लिए धन्य और अलौकिक बना रहा।



जुगताराम दवे

३७. आश्रम-जीवन

आश्रम में एक छात्रालय था, जिसमें देश-विदेश के विद्यार्थी रहते थे। कोई कातना सीखता, कोई पींजना, कोई करघे में खादी बुनना सीखता था। कुछ विद्यार्थी बढ़ई के कारखाने में चरखा बनाना भी सीखते। इन सब के साथ वे पढ़ाई तो करते ही।

आश्रम के छोटे बच्चों के लिए बाल-मंदिर भी चलता था। इसके लिए अलग से शिक्षक रखना चाहिए क्या ? नहीं, आश्रमवासी बहनें ही बालमंदिर भी चलातीं।

आश्रम में सुंदर गौशाला थी, जिसमें बहुत-सी गायें थीं। आश्रम में एक छोटा-सा चर्मालय भी बनाया गया था, जिसमें मरे हुए जानवरों का चमड़ा नरम और कोमल बनाने की तालीम दी जाती। क़त्ल किये हुए का चमड़ा पहनना क़त्ल में साथ देने के बराबर होता है, इसलिए आश्रमवासी इस अहिंसक चमड़े के ही जूते-चप्पल आदि व्यवहार में लाते।

आश्रम में खेती-बाड़ी भी होती थी। फलों के वृक्षों के साथ साग-भाजी भी उगायी जाती। खेतों में अनाज और कपास उत्पन्न होता।

यह समस्त कार्य आश्रमवासी भाई-बहनें और बालक ही करते थे। अपनी-अपनी बारी के अनुरूप वे रसोई में काम करते, पानी भरते, बर्तन माँजते, झाड़ू लगाते, गौशाला की सफ़ाई करते, पाखाना साफ़ करते और बगीचे में काम करते थे।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक गाँधीजी का आश्रम मधुमक्खी के छत्ते की भाँति उद्यम भरपूर उद्योग से गुंजित रहता था। गाँधीजी ने इसे 'उद्योग मंदिर' नाम उचित ही दिया था।



३८. 'नवजीवन'

आश्रम में अब गाँधीजी का काम जमने लगा था। उन्होंने 'नवजीवन' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकालने का निश्चय किया। इसका प्रवेशांक ७.९.१९ को निकला। इस कार्य के लिए अहमदाबाद में एक छोटा-सा प्रेस रख लिया। काम दिनोंदिन बढ़ रहा था। प्रेस के रोज़ के आदमी कम पड़ रहे थे। गाँधीजी को इस संकट के अवसर पर स्वामी आनंद याद आये। उन्हें ज्ञात था कि स्वामी को छापने-छपाने के काम का अनुभव है। यह विश्वास था कि वे इस नये कार्य को विकसित कर सकेंगे।

गाँधीजी ने उन्हें बुलवाया और 'नवजीवन' के साथ उन्हें जोत दिया। वे १९१९ के अंतिम हिस्से में 'नवजीवन' में आये होंगे। इस कार्य को स्वीकार करने के पश्चात् स्वामी ने एक दो महीने में मुझे भी बड़ौदा से बुलवा लिया।

१९१९-२० के दिन थे। गाँधीजी की ओर से सविनय अवज्ञा की, हड़ताल की और उपवास की हाँक पड़ रही थी, जिसके कारण नवजीवन प्रेस में रोज़ उनके हस्तलिखित लेखों का प्रवाह चला आ रहा था। 'नवजीवन' में आठ पृष्ठों के स्थान पर प्रत्येक अंक में १२-१६ पृष्ठ होने लगे थे। चूड़ी ओल की संकरी गली में, उससे भी संकरे नवजीवन प्रेस में, रात-दिन हलचल मची रहती। छपे हुए पृष्ठ का टाइप धुल कर बदलने के पहले ही नये पृष्ठ छापने की ताकीद आ जाती थी। उसमें बहुत बार गाँधीजी के पेन्सिल से लिखे पृष्ठों को पढ़ने की कसरत स्वामी और उनके सहायकों के लिए एक अग्निपरीक्षा ही होती। मशीन-चालक, कंपोज़िटर, प्रूफरीडर आदि सभी के लिए दिन के चौबीस घंटे कम पड़ते थे। रतजगा पर रतजगा करने में वे मानो एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे होते। परन्तु इस क्षमता में स्वामी सबसे आगे निकल जाते। तीन रात्रियों के अखण्ड जागरण के पश्चात् चौथी सुबह भी प्रूफ देखकर छापने की आज्ञा देने में वे तत्पर रहते।

'नवजीवन', 'यंग इन्डिया' में बापू ने अपने स्फुल्लिंग जैसे तेजस्वी लेखों द्वारा आग बरसाना प्रारम्भ किया था। चूड़ीओल का छापाखाना उसके लिए बहुत छोटा पड़ता था। स्वामी ने



सारंगपुर की ओर एक विशाल मकान ढूँढ निकाला। मौलाना मोहम्मदअली ने अपने बंद प्रेस की समस्त सामग्री बापू को सौंप दी। वह सब इस नये मकान में व्यवस्थित कर दी गई।



शाहनवाज़ खां

३९. 'ज़िंदगी भर गूँजते रहेंगे...'

हिंदुस्तान के बाहर जो जंगे-आज़ादी नेताजी सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व में लड़ी गई, उसमें मैं भी एक मामूली-सा सिपाही था। हमने हथियारबंद होकर अंग्रेज़ी फ़ौजों का मुक़ाबला मैदाने-जंग में किया था। हम लोग लड़ाई के मैदान में अपने मक़सद में कामयाब न हुए।

लाल क़िलें से रिहा होने के बाद मुझे क़रीबन डेढ़ बरस महात्मा गाँधीजी की खिदमत में रहकर काम करने का मौक़ा मिला। मैंने उनको बहुत ही क़रीब से देखा। मैंने देखा कि महात्माजी अपनी ज़िंदगी का हर क़दम सत्य और अहिंसा के उसूल के अन्तर्गत उठाते थे। वे यह बात बड़ी ईमानदारी से मानते थे कि किसी नेक चीज़ को हासिल करने के लिए जो उपाय इस्तेमाल किये जाएँ, वह भी नेक और साफ़ होने चाहिए।

अपने उसूल को क़ायम रखने के लिए वे दुनिया के बड़े-बड़े ख़तरे का सामना करना एक मामूली-सा खेल समझते थे। जहाँ कहीं भी जुल्म और हिंसा होती थी, उसका मुक़ाबला करने के लिए वे बिल्कुल बेखौफ़ और निडर होकर उसमें कूद पड़ते थे। नोआखली में जहाँ अत्याचार हुए थे वहाँ महात्माजी नंगे पाँव गाँव-गाँव का दौरा कर रहे थे। जहाँ भी जाते थे, वहशीपन के नज़ारे दिखाई देते थे। जले हुए गाँव और सहमे हुए लोग, जिनका सब कुछ लुट चुका था, मिलते थे। उनके चेहरों से साफ़ ज़ाहिर होता था कि उन लोगों को अपना भविष्य बिल्कुल अंधकारमय नज़र आ रहा है।

लेकिन ज्यों ही उनकी नज़रें महात्माजी के चेहरे पर पड़ती थीं, उनमें एक तब्दीली आती थी और वही ग़मगीन तथा मुरझाये हुए चेहरे यकायक मुस्कराहट से खिल जाते थे। वे बेअख़्तियार यह कह उठते थे कि, अब बापू आ गए हैं, अब कुछ नहीं होगा। उनमें आत्मनिर्भरता का जज़्बा जाग उठता था। यही हालत मैंने बिहार में देखे। मेरा ख्याल है कि अगर भारी से भारी फ़ौजें उन लोगों की हिफ़ाज़त के लिए भेजी जातीं, तब भी वे अपने



आप को इतना महफूज़ न मानते, जितना कि वे महात्माजी की मौजूदगी में महसूस करते थे।

मैंने सोचा है कि आखिर वह कैसी ताक़त थी इस वृद्ध इन्सान में, जो दूसरों का सहारा लेकर चलता था; जिसकी वजह से मज़लूम और डरे हुए लोगों में यकायक बहादुरी का जज़्बा पैदा हो जाता है। वह कौन-सी ताक़त थी जिसके दम पर यह क्षीण-सा इन्सान ज़ालिमों के लश्कर में अकेला कूद कर उनको शिकस्त दे देता था। यकीनन वह महात्माजी की सच और अहिंसा की ताक़त थी जिसके सामने बुराई, जुल्म और हिंसा मुक़ाबले में खड़े नहीं रह सकते थे। वे जहाँ भी जाते लोगों को बहादुरी का सबक़ देते थे – ऐसी बहादुरी, जो लोगों के दिलों से मौत का डर निकाल देती थी।

मैंने लड़ाई के मैदान में सिपाहियों की बहादुरी के बहुत से कारनामे देखे हैं। लेकिन यह बहादुरी, जो महात्माजी लोगों को सिखाते थे, कुछ और ही तरह की बहादुरी थी – एक ठंडी क्रिस्म की बहादुरी, और मैदाने-जंग की बहादुरी की अपेक्षा कड़ी क्रिस्म की बहादुरी – जिसमें वे लोगों को सिखाते थे कि जुल्म और हिंसा का मुक़ाबला करते हुए अपनी जान दे दो, लेकिन किसी दूसरे की जान लेने की कोशिश न करो। यह सबसे ऊँची क्रिस्म की बहादुरी है।

जनवरी सन १९४८ का दिन मुझे अच्छी तरह याद है, जब उन्होंने दिल्ली में जुल्म और हिंसा को रोकने के लिए आखिरी बार मरणव्रत रखा था। व्रत की पहली शाम को मैं और दूसरे चंद साथी उनके पास पहुँचे। उस दिन बापू बहुत ही खुश नज़र आ रहे थे। हँसकर कहने लगे : आज मैं बहुत खुश हूँ क्योंकि आज मैं जुल्म और हिंसा के खिलाफ़ लड़ रहा हूँ; ख़ामोश नहीं बैठा हूँ।

व्रत के चौथे दिन उनकी हालत बहुत ही ज़्यादा बिगड़ गई। डॉक्टर ने कहा कि अगर बारह घंटे के अंदर महात्माजी अपना व्रत नहीं छोड़ेंगे, तो उनकी जान सख़्त ख़तरे में पड़ जायेगी।



सब लोग घबरा गए और सबने यह कोशिश की कि महात्माजी व्रत छोड़ दें। उन्होंने महात्माजी को तरह-तरह की बातें कहीं।

शाम को महात्माजी ने मुझे बुलाया और कहा : शाहनवाज, तुम नेताजी के सिपाही हो, और तुमने मेरे साथ एक बरस से ज़्यादा काम किया है; तुम मुझे धोखा मत देना। तुम सच बताओ कि क्या दिल्ली में जुल्म और हिंसा खत्म हो गये हैं ?

मैंने जवाब दिया, 'नहीं, अभी भी बाहर खड़े हुए लोग नारे लगा रहे हैं कि गाँधी को मरने दो ! जब मैंने यह बात कही, तो महात्माजी के चेहरे पर रौनक आ गई। कितने खूबसूरत थे वे अल्फ़ाज़ जो उन्होंने उस वक़्त कहे ! ज़िंदगीभर वही अल्फ़ाज़ मेरे कानों में गूँजते रहेंगे। उन्होंने कहा, "अगर गाँधी का उसूल मर जाये, तो समझो कि गाँधी ज़िन्दा ही मर गया है; परन्तु यदि गाँधी मर जाए और गाँधी का उसूल (सिद्धान्त) जिंदा है, तो समझो कि गाँधी हमेशा के लिए ज़िंदा है।"



रविशंकर (महाराज) व्यास

४०. 'जितना है उतना तो उपयोग कीजिए।'

एक दिन चार-पाँच युवा मेरे पास आये। बात-बात में उन्होंने पूछा: 'महाराज ! हमारे अंडा खाने के बारे में आपकी क्या राय है।'

मुझे लगा, उन्हें क्या उत्तर दूँ ? परन्तु झट मेरे मुँह से निकल गया :

'अरे, तुम्हें अंडा खाना है या नहीं, इसमें मुझसे क्या पूछते हो ? यह तो अंडा देनेवाली माँ से ही पूछ कर देखो ना।'

'परन्तु दादा, निर्जीव अंडा खायें तो ?

'मुझे यह तो बताओ कि तुम्हें अंडा किसलिए खाना है ?'

'किसलिए ? अंडों में प्रचुर विटामिन और प्रोटीन होता है।' एक ने कहा।

'तुम्हारे पास जितनी विटामिन है, उसका तो उपयोग करो | फिर कमी हो तो पूछना।' इस बात पर मुझे गाँधीजी की एक बात याद आ गई और मैंने उन युवाओं को कह सुनाई :

गाँधीजी तो प्रयोग वीर थे। अनेक प्रकार के प्रयोग किया करते थे। उनका जीवन यानी प्रयोग था। एक दिन गाँधीजी के मन में विचार आया कि यदि मनुष्य कच्चा अनाज खाने की आदत डाल ले तो उसकी कितनी शक्ति बच जाये और कम वस्तु से ज्यादा ताक़त प्राप्त कर सके।

गाँधीजी को विचार आया तो फिर क्या पूछना ?

अपने से ही प्रारम्भ कर देते। यही उनके जीवन की विशेषता थी। मुझे भी उनकी बात उचित लगी और मैं भी उनके प्रयोग में शामिल हो गया। तीन-चार दिन तो बापू को इस प्रयोग से खूब स्फूर्ति रही, परन्तु फिर उन्हें दस्त होने लगे।

एक दिन मैं उनके कमरे में किसी काम से गया।



बापूने मुझसे पूछा तुम्हारा प्रयोग चल रहा है ?

'हाँ। मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।'

'वज़न कम हुआ है ?'

'पौना सेर कम हुआ है।'

'और शक्ति ?'

'थोड़ी कम हुई लगती है।'

'तुम क्या काम करते हो ?'

मैंने अपने हिस्से में आनेवाले समस्त कार्य गिनवा दिये।

'यह सब काम हो जाता है ?'

'हाँ, इसमें कोई कठिनाई नहीं आती।'

'तो फिर कैसे कह रहे हो कि शक्ति थोड़ी घटी है ?' इस बनिये को अब मैं क्या जवाब दूँ।

फिर स्वयं बापू ने जो भाष्य किया उसे मैं कभी भूल नहीं सकूँगा :

'तुम्हें पता है ? उपयोग में आनेवाली शक्ति से अधिक शक्ति शरीर में उत्पन्न हो तो उससे विकार पैदा होता है। यह बहुत समझने योग्य बात है। इसलिए जितना काम करना हो, उतनी ही शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। अधिक शक्ति से कोई लाभ नहीं होता, उल्टे चित्त और इंद्रियो में विकार पैदा होता है।'



रामनारायण वि. पाठक

४१. 'विरोधी शक्तियों का समन्वय'

जीवन का एक भी क्षेत्र नहीं, एक भी ऐसा प्रश्न नहीं, जिसमें गाँधीजी ने कुछ न कुछ न किया हो। जैसे सूर्य उगने पर, खुले में तो उजाला होता ही है परन्तु बंध दरवाज़ों में भी प्रकाश का प्रवेश होता है, दरारों में भी उजाला पहुँचता है वैसे ही उनके द्वारा प्रेरित चैतन्य, समाज के अंधेरे से अंधेरे भाग में भी पहुँचा है। उन्होंने मात्र प्रश्नों पर विचार नहीं किया, वरन् जहाँ प्रश्न उठते ही नहीं थे वहाँ भी उन्हें उठाया है। उनमें अनेक विरोधी शक्तियों का समन्वय हुआ है।

क्रांतिकारी होने पर भी वे प्राचीनता के प्रति आदरभाव रखते हैं। मृदु हैं पर हठीले हैं। आग्रही होने पर भी छूट रखनेवाले हैं। प्रेमल होते हुए भी भीषण हैं। उनकी भीषणता के कुछ वाक्य तो ऐसे हैं जो कभी भूले नहीं जा सकते। उन्होंने एक बार कहा था कि समग्र देश ऐसी पामर अवस्था में पड़ा रहे, इसकी अपेक्षा मैं चाहूँगा कि उसका पृथ्वी से नाश हो जाए। एक अन्य प्रसंग में कहा कि स्त्री, पुरुषों की विषयवृत्ति का साधनभूत बने, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक पसंद करूँगा कि मानवजाति की संतति उत्पन्न होना बंद हो जाये। समय आये और भारत में बड़े पैमाने पर सत्याग्रह शुरू हो, और हज़ारों जीवों को अकथ दुख में और मृत्युमुख में स्वाहा होते देखें तो भी उनकी आँखों में आँसू न आये – इसकी मैं कल्पना कर सकता हूँ। वे मुझे मनुष्य की अपेक्षा गूढ़ प्राकृतिक बल जैसे प्रतीत होते हैं। प्रकृति, एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म, मात्र सूक्ष्मदर्शक यंत्र से दिखे ऐसे रेशों या जंतु को भी, रस देकर पोषण करती है और यही प्रकृति, हमारे लिए अगम्य किसी हेतु के लिए दरिया को उछालती है, पर्वत तोड़ती है, देश के देश उध्वस्त कर देती है।

गाँधीजी उसी प्रकार एक जंतु की तथा पामर से पामर मनुष्य की सेवा करने लगते और हज़ारों का नाश भी करते। प्रकृति एक नमूना सिद्ध करने के लिए असंख्य व्यक्तियों को क्रूर तरीके से मार देती है, तो गाँधीजी एक सत्य के लिए, चाहे जितना त्याग करने के लिए



तैयार हैं। पूर्णतः खुले और निखालिस होने पर भी उनकी आत्मगहनता से स्फुरित बल कुदरत जैसा ही गूढ़ है, अकलनीय है, असीम है, अप्रतिरुद्ध है।



शंकरलाल बैकर

४२. 'सयाना कूटनीतिज्ञ'

मुहम्मदअली जिन्ना होमरूल लीग की मुंबई शाखा के अध्यक्ष थे और मैं उस शाखा का सचिव था, इसलिए वे मुझसे खुले दिल से बातें करते थे। वर्षभर मैं गाँधीजी के साथ जेल में रह आया था इसलिए स्वाभाविक रूप से वे उनके विषय में पूछने लगे। गाँधीजी के साधू जैसे संयमी जीवन का मुझ पर गहरा असर था, अतः उसी बारे में मैं उनसे कहने लगा।

परन्तु जिन्ना के मन में गाँधीजी के प्रति कुछ अलग ही विचार पुष्ट हो गये थे। वे मुझसे बोले कि, "आप गाँधी को पहचानते नहीं हैं। वे बड़े क्रांतिकारी तो हैं ही, साथ ही साथ महान कूटनीतिज्ञ भी हैं। देखिए तो ज़रा, सरकार से लड़ाई में कैसी चतुराई से काम लेते हैं! पहले लोगों से सम्पर्क साधते हैं। जिस बारे में उन्हें दुख हो उसे वे स्वयं अपने हाथ में लेते हैं! आंदोलन शुरू करते हैं और शक्ति इकट्ठा करके लड़ाई में जुट जाते हैं और जोश के साथ लड़ाई चलती है। पर बाद में, कहीं कुछ गड़बड़ हो, हिंसा हो या ऐसा कोई कारण ज्ञात हो जिससे सरकार के हाथ मज़बूत हों और वह कुछ कठोर क़दम उठाने को तैयार हो, तब गाँधी बड़ी होशियारी से लड़ाई समेट लेते हैं। जिससे वातावरण शांत हो जाता है। लेकिन कुछ समय के पश्चात् असंतोष का कोई कारण दिखे कि तुरंत फिर से ज़ोरों का आंदोलन प्रारम्भ करते हैं। लड़ाई शुरू करते हैं, समेट लेते हैं, फिर दोबारा शुरू करते हैं। इस प्रकार से लोगों को लड़ाई की तालीम देते जाते हैं। सरकार की ताक़त बहुत है और लोगों में बहुत कमज़ोरी है इसलिए आंदोलन एकसाथ लंबे समय तक चलाया नहीं जा सकता। परन्तु इस प्रकार युक्तिपूर्वक थोड़े-थोड़े समय आंदोलन चलाकर, फिर बंद करके, दोबारा शुरू करके वे लोगों को तैयार करते जाते हैं। इसलिए आप जैसा समझते हैं गाँधी वैसे साधू नहीं हैं बल्कि बड़े चतुर और सयाने कूटनीतिज्ञ हैं।"



४३. 'क्या यह कहूँ कि फिल्म बनाओ ?'

१९२२ में गाँधीजी को ६ वर्ष कैद की सज़ा हुई थी। उनके साथ मुझे भी एक वर्ष की सज़ा हुई थी। एक साल मैं गाँधीजी के साथ जेल में रहा, उस समय उनकी दिनचर्या में कातने-पींजने को मुख्य स्थान था। शरीर के काम करने की हद तक उन्होंने रोज़ दो घंटे पींजने और चार घंटे कातने के लिए रखे थे। इसी दौरान एक नेता, जिनकी कैद की अवधि समाप्त होने आई थी, गाँधीजी से मिले और पूछा, 'बापू ! जेल से बाहर जाकर मुझे क्या करना चाहिए, इस विषय में मुझे कुछ सलाह दीजिए।'

गाँधीजी ने कहा, 'बाहर जाकर ज़ोर-शोर से देश में खादी का प्रचार करो।'

वे स्वयं खादी प्रेमी थे और श्रद्धापूर्वक चरखा भी चलाते थे। परन्तु लोगों की वृत्ति के संबंध में उनके मन में संदेह था। इसलिए उन्होंने कहा 'बापू ! आपका कहना ठीक है पर यह खादी चलेगी कैसे ? यदि लोगों को यह पसंद न आये तो क्या किया जा सकता है ?'

उन सज्जन के ऐसे प्रश्न से गाँधीजी को दुख हुआ और वे कुछ व्यग्रता से बोल उठे, 'ठीक है, फिर आप ही कहिए कि दूसरा क्या काम बताऊँ ? क्या मैं यह कहूँ की सिनेमा निकालिए ? सिनेमा तो लोगों को बहुत पसंद आयेगा। सैकड़ों की संख्या में लोग यह देखने आयेंगे और उसके लिए पैसे भी देंगे। पर उससे क्या ? क्या हमारा कार्य, लोगों को पसंद की प्रवृत्ति बताना ही है ? हमें तो उन्हें वही मार्ग दिखाना चाहिए जिसमें उनका हित हो और चरखा ही वह मार्ग है।'

ग़रीब प्रजा को तन ढकने के लिए पूरा कपड़ा नहीं मिलता, इस स्थिति से चौंक कर उन्होंने लंगोट धारण किया था और अन्य सभी वस्त्रों का त्याग किया था। देश में ग़रीबी का दुख तो है ही, परन्तु प्रजा में घर बना कर बैठा आलस्य गाँधीजी को इससे भी अधिक खटकता रहता था। इसलिए वे कहने लगे : 'लोगों को कपड़ा नहीं मिलता और भुखमरी सहनी पड़ती है, यह दुख की बात है ही। परन्तु इससे भी अधिक दुखद तो उनमें भरा हुआ आलस्य है।'



अपने देश की ऐसी दयनीय स्थिति क्यों है ? इस पर विचार करें तो इसके मूल में आलस्य ही भरा मिलेगा। प्रजा को यदि गरीबी खटकती हो तो मेहनत करके उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन आज तो आलस्य का जाला ऐसा जम गया है कि जहाँ गरीबी और बहुत दुख है वहाँ आलस्य भी उतना ही अधिक दिखाई देता है। यह आलस्य दूर हो तो गरीबी मिटे। आलस्य को दूर करने का असल उपाय यह है कि ग्रामीण जन जिसे आसानी से कर सकें, ऐसे कामों में उन्हें लगाना। तभी उनके शरीर का और साथ-साथ मन का आलस्य भी दूर होगा।'



४४. 'विश्वामित्र ऐसा कैसे कर सकते हैं ?'

जेल में जो समय मिले, उसका पूरा-पूरा उपयोग करने का विचार गाँधीजी को आता था। बाहर रहने पर सार्वजनिक कार्यों की अधिकता के कारण कुछ अन्य करने का अवकाश ही नहीं होता था। परन्तु जेल में तो ऐसी स्थिति होती कि अन्य सब कुछ ठीक तरह से हो सके। इसलिए उन्होंने विचारपूर्वक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया था। सर्वाधिक महत्त्व तो वे चरखे को ही देते थे। लिखने-पढ़ने का काम भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। रोज़ के लगभग चार-घंटे तो इसमें ही बीतते थे।

पढ़ने के संदर्भ में भी, उन्होंने तय कर रखा था कि किन-किन पुस्तकों को पढ़ना है, उसी के अनुसार नियमित रूप से पढ़ते थे। गुजराती किताबों में 'रामायण', 'महाभारत', 'भागवत', तिलक महाराज की 'गीता', 'ज्ञानेश्वरी गीता' आदि मुख्य थे। पढ़ने के साथ-साथ लेखन-कार्य भी चलता रहता। 'दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास', 'बाल-पोथी' आदि जेल में ही लिखे गये थे।

गाँधीजी ने 'ज्ञानेश्वरी' गुजराती में पढ़ी, उन्हें वह बहुत पसंद आई। इसलिए मुझसे बोले, 'आपको यह पुस्तक पढ़ने के लिए ललचा सकता हूँ।' उस समय तक मेरी रुचि आध्यात्मिक विषयों की ओर नहीं हुई थी, अतः मैंने कहा, 'आप कह रहे हैं तो लगता है कि पढ़ना चाहिए, पर असल में वृत्ति नहीं होती।' वे मेरा मन समझ गए और इस बारे में आग्रह नहीं किया। फिर काफ़ी समय के पश्चात् उस पुस्तक की ओर ध्यान गया और मैंने पढ़ा। तब बहुत पश्चात्ताप हुआ कि वह किताब जेल में क्यों नहीं पढ़ी। ईश्वर की कृपा होने पर ही ऐसी किताब पढ़ने का अवसर मिलता है और पढ़ने में रुचि भी होती है।

गाँधीजी लोकमान्य तिलक की 'गीता' पढ़ रहे थे। तभी एक सुबह मुझसे कहने लगे, 'तीन दिन से मेरा मन बहुत दुखी हो रहा है।'

मैंने पूछा, 'किस वजह से ?'



उन्होंने कहा, 'मैं लोकमान्य तिलक की 'गीता' पढ़ रहा हूँ। उसमें उन्होंने आपद्धर्म के बारे में लिखा है और इस पर विश्वामित्र का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। भीषण अकाल पड़ा था। कहीं अनाज नहीं मिल रहा था और विश्वामित्र को भयंकर भूख लगी थी। वे एक चांडाल के यहाँ गए और मृत कुत्ते का मांस खाने बैठ गये। चांडाल ने कहा, 'आप ब्राह्मण और मैं चांडाल। यह मांस भी मृत कुत्ते का है। आप यह कैसे खा रहे हैं ? विश्वामित्र ने उसे उत्तर दिया कि 'अभी यह सब बातें मत करो। यह तो आपद्धर्म। प्राण बचाने का इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है।'

इतना कहकर गाँधीजी ज़रा ठिठके, फिर बोले, 'हिंदु धर्म ऐसा नहीं हो सकता। विश्वामित्र प्राण छोड़ देंगे, पर ऐसा क्यों करेंगे ? मेरे मन से यह बात हटती ही नहीं और पारावार दुख हो रहा है।'

इस बारे में वे इतने भाव-विवश हो गए कि दो-तीन दिन तक उसी का विचार करते रहे। मुझे उनके विचार समझ में नहीं आये। मुझे लगा कि उस युग में जो हुआ सो हुआ, भला इसका दुख करने का क्या अर्थ है ?



नरहरि परीख

४५. 'महादेवभाई की डायरी'

महादेवभाई १९१७ में गाँधीजी के साथ जुड़े और तब से १९४२ में उनका देहान्त होने तक उन्होंने डायरी लिखी है। गाँधीजी के पत्र-व्यवहार, उनके भाषण, व्यक्तियों से हुई बातचीत आदि के साथ विविध विषयों पर उनके विचार वे लिख लेते थे।

गाँधीजी का सम्पूर्ण जीवन एक खुली किताब था। निजी और व्यक्तिगत कहलानेवाली बातें उनके बारे में संसार जितना जानता था उतना शायद ही अन्य किसी नेता का जानता हो। फिर भी गाँधीजी की बहुत-सी जानने योग्य बातें अभी तक जनता को जानने नहीं मिली। गाँधीजी की अप्रकाशित खासियतें, जीवनप्रसंग और जीवन के प्रति उनके विचार इन डायरियों से ज्ञात होते हैं। उनके द्वारा पढ़ी गई पुस्तकों का विवेचन और कितनी ही पुस्तकों में से आकर्षक पंक्तियाँ (सूक्तियाँ) महादेवभाई ने प्रस्तुत की हैं।

महादेवभाई की डायरियाँ गाँधीजी के जीवन-चरित्र के लिए कच्ची और अतिशय महत्त्वपूर्ण सामग्री हैं। मानवजाति को प्रेरित करनेवाले अति उपयोगी साहित्य के रूप में उसका महत्त्व है। विषयवस्तु की उदात्तता के साथ उसकी चित्ताकर्षक प्रस्तुति के कारण 'महादेवभाई की डायरी' का स्थान डायरी साहित्य में अनन्यतम रहेगा।



घनश्यामदास बिरला

४६. 'बीमार की मृत्युशैया पर'

बहुत वर्ष पहले की बात है। दिल्ली का प्रसंग है। एक महिला मृत्युशैया पर थी। रोग से लड़ते-लड़ते बेचारी का शरीर बिल्कुल क्षीण हो गया था। केवल साँस बाक़ी थी। उसने जीवन की आशा छोड़ दी थी और अपनी अंतिम यात्रा के शेष दिन राम-राम करके बिता रही थी। फिर उसे लगा : 'गाँधीजी के दर्शन हो सकेंगे क्या ? जाते-जाते अंत में उनके दर्शन कर लूँ।' गाँधीजी तो दिल्ली के नज़दीक भी नहीं थे अर्थात् उनका दर्शन संभव न था। लेकिन मरते व्यक्ति की आशा पर पानी फेरना मुझे ठीक न लगा, इसलिए मैंने कहा, देखते हैं, संभव है ईश्वर आपकी इच्छा पूरी करे।

दो दिनों के पश्चात् ही मुझे समाचार मिला की गाँधीजी कानपुर से दिल्ली होकर अहमदाबाद जा रहे हैं। उनकी गाड़ी सुबह चार बजे दिल्ली पहुँचती थीं और अहमदाबाद की गाड़ी पाँच बजे छूटती थी। केवल एक घंटे का समय था। और वह बेचारी बीमार महिला दिल्ली से दस मील दूर थी। एक घंटे में रोगी से मिलकर वापस स्टेशन पहुँचना मुश्किल था।

सर्दी का मौसम था। तेज हवाएँ चल रही थीं। सुबह के प्रहर में गाँधीजी को मोटर (उन दिनों खुली मोटर हुआ करती थी) में बीस मील की यात्रा करवाना भी भयानक था। गाँधीजी आ रहे हैं, इस बात का कोई अनुमान तक उस महिला को नहीं था।

गाँधीजी गाड़ी से उतरे। मैंने दबी आवाज में कहा, 'आप आज रुक नहीं सकते ?' गाँधीजी ने कहा, 'रुकना मुश्किल है।' मैं हताश हो गया। रोगी को कितनी निराशा होगी, यह मैं जानता था।

गाँधीजी ने पूछा, 'रुकने के लिए क्यों कह रहे हैं ?' मैंने उन्हें कारण बताया तो गाँधीजी का जवाब था, 'चलिए, अभी चलते हैं।'



'परंतु आपको इस सर्दी में शर्मा मारती हवा में, सुबह के इस प्रहर में मोटर में बैठा कर मैं कैसे ले जा सकता हूँ ?'

इसकी फ़िक्र मत कीजिए। मुझे मोटर में बिठवाइए। वक्रत गँवाने से क्या लाभ ? चलिए, चलिए।'

गाँधीजी को मोटर में बैठाया। कड़कड़ाती ठंडी और ऊपर से तीक्ष्ण पवन निर्दयता से अपनी ताक़त आजमा रहा था। सूर्योदय तो अभी हुआ नहीं था। ब्राह्म मुहूर्त की शांति चारों ओर फैली हुई थी। बीमार बहन बिस्तर पर पड़ी-पड़ी 'राम-राम' जप रही थी।

गाँधीजी उसकी खाट के नज़दीक पहुँचे। मैंने कहा, 'गाँधीजी आये हैं।' उसे विश्वास न हुआ। पर उन्हें देख वह घबराकर, चकित होकर उठने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन उठने की शक्ति कहाँ थी ? उसकी आँखों से दो बूँद चुपचाप फिसल पड़े। बीमार की आत्मा को कितना सुख मिला, यह उसकी आँखें कह रही थीं।

गाँधीजी की गाड़ी तो छूट गई थी। इसलिए मोटर से ही अगले स्टेशन तक पहुँच कर, गाड़ी पकड़ी।



बलवंतसिंह

४७. 'चिड़ियाँ चुग गई खेत'

एक दिन बापू ने ऐसी योजना बनायी कि सबके जूठे बर्तन दो-तीन लोग मिलकर बारी-बारी से माँजे। इससे लोगों के अंदर प्रेमभाव बढ़ेगा, एक-दूसरे के बर्तन माँजने में जो घृणा होती है वह दूर होगी तथा सबका समय भी बचेगा। उनकी यह बात मुझे नहीं रुची। मैंने कहा कि सबके जूठे बर्तन एक साथ माँजने से अव्यवस्था होने का भय है। बापू ने कहा कि अव्यवस्था में व्यवस्था लाना ही हमारा काम है। चलो, पहली बारी मेरी और बा की। बस, बा को साथ लेकर बापू बर्तन माँजने के स्थान पर जाकर बैठ गये और सबसे कह दिया कि थाली यहीं रख दीजिए तथा हाथ धोकर चले जाइए। पहले तो लोग घबराये, परन्तु बापू का भाव देखकर सभी बर्तन रख कर चले गये। बापू और बा दोनों बर्तन माँजने में जुट गये। मैं रसोईघर का प्रबंधक था। मुझे वे कुछ कह न सकते थे इसलिए मैं भी उनकी सहायता में लगा।

जब बा और बापू सबके जूठे बर्तन साफ़ कर रहे थे तब मेरे मन में आनन्द और शर्म का द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था। साथ ही यह भाव भी पक्का होता जा रहा था कि यदि बापू और बा इस प्रकार के काम कर सकते हैं तो फिर हमारे मन में किसी भी काम के लिए छोटे-बड़े का भेद नहीं रहना चाहिए। बीच-बीच में बापू और बा का मनोरंजन भी चल रहा था। देखें कौन अधिक अच्छी तरह साफ़ करता है – यह होड़ भी चल रही थी। बापू बर्तन साफ़ करते हुए कहते हैं, "क्यों बलवन्तसिंह ! कैसे साफ़ हुए हैं ? आप हिम्मत क्यों हारते हैं ? आदमी निश्चय करे तो दुनिया में ऐसा कौन-सा काम है जो वह न कर सके ? आखिर हमारे घरों में क्या होता है ? स्त्रियाँ ही घर के सारे जूठे बर्तन साफ़ करती हैं। यह हमारा विशाल कुटुम्ब है और हमें स्त्री-पुरुष का भेद नष्ट करना है। इसलिए मैंने रसोईघर का प्रबंध किसी बहन को न देकर आपको दिया है। साबरमती में भी रसोई विनोबा के जिम्मे थी। मैं चाहता हूँ कि स्त्री-पुरुष के कार्यों के संबंध में जो भेद है वह अपने आश्रम में रहना ही नहीं चाहिए।



विशेष रूप से रसोईघर तो पुरुषों को ही चलाना चाहिए। मैंने अपने जीवन में ऐसे अनेक प्रयोग किये हैं और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि सामुदायिक रसोई चलाने से जैसी कुटुम्ब भावना बढ़ती है वैसी अन्य किसी प्रकार से नहीं। जो रसोई चलाता है उसका दायित्व भी बहुत अधिक होता है। समस्त वस्तुओं को व्यवस्थित और स्वच्छ रखना तथा प्रत्येक सदस्य को भगवान मानकर प्रेम से भोजन करवाना आध्यात्मिक प्रगति की महान साधना है। आप इसमें उत्तीर्ण होंगे तो मैं समझूँगा कि आप सेवा कर सकते हैं।”

मेरे मन में एक ओर तो यह चल रहा था कि बापू बर्तन छोड़ कर यहाँ से शीघ्रताशीघ्र चले जायें तथा दूसरी ओर यह चल रहा था कि बापू जितना अधिक समय यहाँ रहें उतना अच्छा ! काश ! मैं चित्रकार होता तो उस दिन का एक चित्र बनाकर सबके आगे रखता।

यह लिखते समय मेरे मन में जो भाव उमड़ रहे हैं उन्हें लिपिबद्ध करना मेरी क्षमता के बाहर है। कहाँ बापू और कहाँ हम ? उन्होंने कितने-कितने कष्ट सहकर हमें कैसे-कैसे सुंदर पाठ सिखाये हैं ? परन्तु हम सम्पूर्ण रीति से उनके पाठ पचा नहीं सके हैं। अब सोचते हैं कि बापू दो-चार वर्ष के लिए वापस आ जायें तो उनसे ढेरों पाठ सीखें। परन्तु 'अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।'



४८. 'निःस्वार्थ सेवा से ही हृदय-स्पर्श हो सकता है।'

एक विशेष दिन, सावली नामक गाँव में देवी को बकरे की बलि देने का कार्य सामूहिक रूप में हो रहा था। सभी लोग एक-एक बकरा लेकर वहाँ जाते और देवी के समक्ष उसे बलि चढ़ाकर उसका मांस पका कर खाते। इसका पूरा वर्णन मैंने बापू को लिखा था। अत्यन्त भयानक दृश्य था, पेड़ पर बकरे टंगे हुए थे। मेरे पत्र के उत्तर में बापू ने यह लिखा था :

वर्धा,

१७-९-१९३५

चि. बलवंत सिंह

देवी के समक्ष बकरों के भोग का वर्णन दुःखद है। यह सदियों की भ्रामक मान्यताएँ हैं, हम इसे एक क्षण में दूर नहीं कर सकते। लोग समझ सकें — ऐसी सेवा जबतक हमने की नहीं, तब तक हमारी बात सुनने के लिए उनके हृदय तैयार नहीं होंगे। बुद्धि का विकास तो इससे भी कठिन है। निस्वार्थ सेवा से हृदय-स्पर्श शीघ्र हो सकता है, इसलिए आज तो हमें इन बलि चढ़ानेवालों में सेवाकार्य करना है। मौका मिलते ही उनका भ्रम दूर करवायेंगे। स्मरण रखिए कि जो दृश्य आपने निरक्षर लोगों में देखा है वही दृश्य शिक्षित लोगों में, कलकत्ता में, बहुत बड़े प्रमाण में दृष्टिगत होता है।

बापू के आशीर्वाद



क्लेयर शेरिडन

४९. 'भव्य सादगी'

एक छोटे पर महान, ऐसे महात्मा का बहुत नज़दीक से निरीक्षण करने का सद्भाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। मेरी सहेली सरोजिनी नायडू के द्वारा मैं उनका शिल्प बनाने की अनुमति प्राप्त कर पायी थी।

यह कार्य आसान नहीं था। वे शिल्प बनवाने के लिए विशेष रूप से बैठें, यह तो संभव नहीं था। इसका कारण या तो विनम्रता या काम का अतिशय बोझ अथवा कला के प्रति उदासीनता हो सकती है।

इसी बात पर मुझे लोकनायक लेनिन याद आए। १९२० में मोस्को में क्रेमलीन के उनके कार्यालय में मुझे प्रवेश मिला, तब उन्होंने ऐसी ही शर्तें रखी थीं। इन दो लोकनेताओं में अद्भुत साम्य है। दोनों के बीच हिंसा-अहिंसा के बारे में मतभेद अवश्य है, फिर भी दोनों अत्यन्त उत्साही आदर्शवादी हैं।

मैं महात्माजी के सम्मुख पहली बार गई तब उन्होंने कहा (जैसा लेनिन ने भी कहा था) :

'विशेष रूप से शिल्प बनवाने के लिए मैं आपके सामने बैठ नहीं सकता। मैं अपना कार्य करता रहूँगा। ऐसी स्थिति में आपसे जो कुछ हो सके वह कीजिए।'

गाँधीजी ज़मीन पर बैठकर चरखा चलाते रहे। लेनिन अपने ओफिस की कुर्सी पर बैठे-बैठे पुस्तक पढ़ते रहे।

दोनों प्रसंगों में, अंत में हमारी परस्पर मित्रता हो गयी थी। एक दिन गाँधीजी ने लेनिन के जैसे शब्दों में तथा उनके जैसे ही कटाक्षभरी स्मित के साथ कहा :

'अच्छा, तो आप विंस्टन चर्चिल की मौसेरी बहन हैं ?'

वही पुराना खेल : विंस्टन की एक संबंधी उनके कट्टर शत्रु के साथ मित्रता करे ! गाँधीजी ने आगे कहा :



“आपको ज्ञात है कि आपके भाई मुझसे मिलना तक नहीं चाहते ? पर आपसे मिलकर मुझे कितना आनन्द हुआ है यह आप उनसे कहेंगी या नहीं ?”

लेनिन ने भी लगभग इसी प्रकार कहा था : “आप अपने भाई से कहियेगा.....आदि।”

इन दोनों पुरुषों ने जगत को अमर संदेश प्रदान किया है। यह संदेश ऐसा है जो दीन-दुखी और दलितों को आशा और उत्साह प्रदान करता है। इन संदेशों से रंक मनुष्यों ने अपना सिर ऊँचा करना तथा जगत में अपना स्थान समझना सीखा है।

जिन्होंने लेनिन की लड़ाई में प्राण गँवाए वे वीर कहाए; परंतु जिन्होंने गाँधीजी के नाम पर प्राण अर्पित किए वे वीर और शहीद दोनों प्रतीत होते हैं।

अमेरिका के शिल्पकार जो डेविड्स ने भी गाँधीजी की एक प्रतिमा (Bust) गढ़ी थी। उनसे बात करने का अवसर मुझे मिला था। जो डेविड्स ने अपने समय के बहुत से अग्रगण्य पुरुषों के शिल्प बनाये हैं। एक बात में हम दोनों की सम्मति रही कि इन लोगों से मिलकर हममें निराशा उपजी थी। इन सबके साथ सुरक्षा दल के घेरे न हों, उनके द्वारा हथियाये गये महलों में उन्हें न बैठाया गया हो तो उनमें से एक भी व्यक्ति की छाप हमारे मन पर न पड़े। परन्तु गाँधीजी इन सबसे अलग उभरते हैं। छोटे-से, खुले पैर और खादी से ढके शरीरवाले इस पुरुष की भव्य सादगी मन पर गहरा प्रभाव डालती है।



धीरुभाई ठाकर

५०. 'भव्योज्ज्वल जीवन की चिरप्रतिष्ठा'

महादेव देसाई के सुपुत्र नारायण देसाई ने बचपन से ही गाँधी विचार और आचार के संस्कार पाये थे। मातृभाषा गुजराती के अतिरिक्त वे बांग्ला, हिंदी और अंग्रेजी का ज्ञान रखते हैं। उन्होंने एक दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना की है परन्तु उनकी सर्जकता का वास्तविक उन्मेष तो उनके द्वारा रचित महादेव देसाई और गाँधीजी के जीवन-चरित्र में हुआ है।

(अग्रिकुंड मां ऊगेलुं गुलाब – १९९२) 'अग्रिकुंड में खिला हुआ गुलाब' (१९९२) महादेवभाई के समग्र जीवन को समेटता उपन्यास जैसा रोचक, रससिक्त और प्रामाणिक चरित्र है। यह जितना महादेवभाई का चरित है उतना ही गाँधीजी का भी बन गया है।

नारायण देसाई का सर्वोत्तम प्रदेय है गाँधीजी का बृहत् चरित्र 'मारूं जीवन एज मारी वाणी' (२००३) (मेरा जीवन ही मेरी वाणी है।) के चार भाग, जो उनके वर्षों के परिश्रम का नतीजा है। लगभग २२०० पृष्ठों में विस्तृत इस चरित्र का प्रकाशन गुजरात के संस्कार-जीवन और गुजराती साहित्य की महत्त्वपूर्ण घटना है। गाँधीजी और उनके जीवन-कार्य से संबंधित असंख्य ग्रंथ लिखे गए हैं। परन्तु गुजराती भाषा में संपूर्ण, सुगठित, अधिकृत बृहद् गाँधी चरित्र उपलब्ध नहीं था। गाँधीजी के जीवन के पल-पल का हिसाब देनेवाला, दुनिया के चरित-साहित्य में अपनी श्रेष्ठता स्थापित करनेवाला, ऐसा प्रभावक गाँधी-चरित प्रदान करने की इच्छा महादेवभाई की थी। इस उद्देश्य से उन्होंने डायरी में सामग्री भी एकत्रित की थी। परन्तु उनका असमय अवसान हो गया। नारायण देसाई ने यह गाँधीचरित रच कर पिता की मनोकामना पूर्ण की है।

लेखक ने अनेक दुष्प्राप्य साधनों का उपयोग करके, महाकाव्यात्मक इस भव्य, सुंदर चरित्र-कथा को श्रद्धेयता अर्पित की है। इस महाकथा में अनेक रससिक्त उपकथाएँ



सहजता से गूँथी हुई हैं। नारायण ही बता सकें, ऐसे अनेक सूक्ष्म ब्यौरे रत्नकणिका की भाँति इस गाँधीकथा में अपनी जगमगाहट बिखेर रहे हैं।

नारायण देसाई गाँधीदर्शन को विश्व के समक्ष रखनेवाले समर्थ चिंतक हैं, वे और भी बहुत कुछ हैं। परन्तु इन सबसे अधिक, विश्वविभूति गाँधीजी के भव्योज्ज्वल जीवन को अक्षरबद्ध करके गुजराती साहित्य में उसकी चिरप्रतिष्ठा करनेवाले समर्थ चरित्रकार हैं। उनकी यह अक्षरसेवा गाँधीजी के साथ चिरस्मरणीय बन गयी है।



इन्दुलाल याज्ञिक

५१. 'ऐतिहासिक सभा'

अस्पृश्यता निवारण का आंदोलन मुंबई और पूणे में तो गाँधीजी के आगमन के पहले ही चलता था। गुजरात में महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ ने अछूतों के उद्धार के लिए १९ वीं सदी से प्रयास किये थे। लेकिन गाँधीजी ने तो देश में कदम रखते ही अस्पृश्यता निवारण के पुण्यकार्य को अपने जीवन में गूँथ लिया और तबसे इस संदर्भ में नया इतिहास रचा जाने लगा।

१९१७ के नवम्बर महीने में, गुजरात राजकीय परिषद का प्रथम अधिवेशन गोधरा में, गाँधीजी की अध्यक्षता में हुआ। तब परिषद के अंतिम दिन उनकी प्रेरणा और ठक्कर बापा तथा मामा फड़के के प्रयासों से गुजरात के कार्यकर्ताओं, शहर के सवर्णों और अन्त्यज भाइयों की एक ऐतिहासिक सभा हरिजन मुहल्ले में आयोजित की गई।

शमशान के रास्ते पर स्थित इस मुहल्ले (वास) में गाँधीजी और अन्य सवर्ण अतिथियों का स्वागत करने, हरिजन भाइयों ने तोरण बाँधे, बहुत-से कमान-युक्त द्वार रच कर संपूर्ण मार्ग को सज्जित किया। देखते ही देखते हज़ारों लोगों का ठट वहाँ जम गया। ऐसा दृश्य गुजरात में पहली बार ही दिखाई दिया था कि जहाँ सेठ, वकील, व्यापारी और अन्य गृहस्थ हरिजन लोगों के साथ एक सभा में हिलमिल कर एकत्रित हुए हों।

अपने मुहल्ले में पधारनेवाले बड़े लोगों के सम्मान में हरिजनों ने अपने झोंपड़े और आँगन को झाड़-पोंछकर साफ़ किया और पूरे मुहल्ले को ध्वज-तोरणों से सजाया। मेहमानों के आने का समय नज़दीक आने लगा तो उनके दिल में घबराहट होने लगी कि ब्राह्मण, बनिया आदि हमारे घर भले ही आ रहे हों, पर हम उनका स्पर्श कैसे कर सकते हैं ? ज़माने के कुचले हुए इन लोगों ने निश्चय किया कि सवर्णों के आने से पहले ही सबलोग अपनी-अपनी छपरी (झोंपड़ी) के ऊपर चढ़ जाएँ और महात्मा गाँधी का भाषण वहीं बैठकर सुनें।



ठक्कर बापा आकर मुहल्ले में चक्कर लगाने लगे। इतनी बड़ी सभा तथा सवर्ण भाइयों को निहारकर हर्षित हुए। परन्तु हरिजन समाज के जिन नेताओं से पहले मिले थे, उनकी गैरहाज़िरी उन्हें तुरंत खटकी। चक्कर लगाते हुए सहज भाव से उनकी दृष्टि ऊपर गई तो चकित रह गये, क्योंकि सभी हरिजन अपने परिवार सहित छपरे पर चढ़े हुए थे। बापा भी यूँ हार माननेवाले न थे। उन्होंने दर्दभरी वाणी में हरिजन भाइयों से नीचे उतरने का अनुरोध किया। बहुत कोशिश से हरिजन परिवारों को छपरी से नीचे उतरवाने में वे सफल हुए।



तनसुख भट्ट

५२. 'अहिंसा का अलग प्रकार'

अपने खेतों में नुक़सान पहुँचाते बंदरों को गाँव के किसान गोफन के प्रयोग से भगाते। गोफन के गोले की मार से हड्डी तुड़वाने की अपेक्षा गाँधीजी के अहिंसक आश्रम के खेतों में जाना कया बुरा है ? वहाँ ऐसी मारपीट का कोई नाम भी नहीं लेगा। संभवतः इसी ख्याल से बंदरों का झुंड आश्रम की खेती की उपज का स्वाद लेने लगा। आश्रम में मूली, मोगरी, टमाटर, पपीता, नारंगी आदि फलते थे। इन कंदमूल और फलों का आहार बंदरों को पसंद आ गया। परिणाम स्वरूप आश्रम की खेती को नुक़सान होने लगा। गाँधीजी के पास फ़रियाद गई। गाँधीजी अति व्यवहारिक व्यक्ति थे। खेती करना, बाग़ का पोषण करना और फिर बंदरों को कृष्णार्पण (अथवा रामार्पण या हनुमानार्पण) कर देना मूर्खता का कार्य है। इसलिए उन्होंने, इस अहिंसक महात्माने, पंचमहाल से तीर-कमानवाले भीलों को बुलवाकर चौकीदार रखा। तथा महात्मा मोहनदास ने उन्हें शाखामृगों (बंदरों) को तीर से बींधने की छूट दे दी। गाँधीजी की अहिंसा हमारी जीवदया की अहिंसा से कुछ अलग प्रकार की थी।



मुकुलभाई कलार्थी

५३. 'बापू-मोची'

एक दिन वल्लभभाई बापू से बोले, 'पिछले वर्ष यहाँ एक अच्छा मोची था। अब अच्छे मोची नहीं रहे। दो-दो इंच चौड़ा पट्टा बना लाया, इसलिए मुझे जूते लौटाने पड़े।'

बापू ने कहा : 'मैं चमड़ा मँगवाकर सी दूँ ? देखूँ तो भला, सीखी हुई कला मुझे अब तक याद है या नहीं ? मुझे जूते बनाना अच्छा आता था, यह तो आप जानते हैं ना ? मेरी कारीगरी का नमूना सोदपुर के खादी प्रतिष्ठान में है। यहाँ सोराबजी अडाजणिया आये थे और उन पर सत्यानंद बोस ने बहुत प्रेम बरसाया था। इसलिए उन्होंने मुझे लिखा था कि इस व्यक्ति को आपके हाथों बने जूते भेजें तो अच्छा रहे। मैंने उन्हें भेज भी दिया। परंतु यह तो बड़ा विनम्र बंगाली निकला। उसका कहना था कि यह जूते मेरे पैरों में नहीं, सिर पर रखने योग्य है। उसने एक दिन भी उसका उपयोग नहीं किया, अपने पास रखे रहा और बाद में खादी प्रतिष्ठान के संग्रहालय को प्रदान कर दिया।'

उसी दिन ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के लिए 'आत्मकथा' की संक्षिप्त आवृत्ति में कुछ नये प्रकरण महादेवभाई ने पूरे किये थे, जिसे बापू जाँच चुके थे। इसकी याद आते ही बापू बोले : 'महादेव, इस संक्षेप में मेरे जूते बनाने का किस्सा कहीं पढ़ने में क्यों नहीं आया ? आना चाहिए। टॉलस्टॉय फार्म में यह धंधा बहुत अच्छा चलता था। मैंने तो बच्चों के लिए कितने ही जूते तैयार किये। केलनबैक एक ट्रेपिस्ट मोनेस्ट्री से सीख कर आये थे और उन्होंने ही हमें सिखाया था।'



५४. 'भूल-चूक माफ़ करना'

बापू रविवार की दोपहर तीन बजे मौन धारण करते थे। यह सोचकर कि किसी अधिकारी से मिलने का प्रसंग आये तो रवि और सोम दोनों दिन कुछ समय बात करने के लिए रहे। एकबार तीन बजने में दो-चार मिनट बाक़ी थे कि वल्लभभाई बोले : 'अब पाँचेक मिनट ही बचे हैं। आपको जो सौपना, कहना हो कह डालिए।'

महादेवभाई ने यह सुनकर कहा, 'आप तो मानो विल (वसीयत) बनाने के लिए कह रहे हैं।' बापू बोले, 'लो, फिर कह ही दूँ। कोई भूल-चूक हुई हो तो माफ़ करना।' और खिलखिला कर हँसने लगे।

उन्हें एक मधुर स्मरण हँसा रहा था। बापू ने कहा : 'बा बेचारी कहने लगी, भूल-चूक हुई हो तो माफ़ करना।'

वल्लभभाई ने पूछा 'कब ?'

बापू : 'अरे, मुझे पकड़ने आये तभी तो। आँख से आँसू झर रहे हैं और कहती हैं, भूल-चूक माफ़ करना।' उस बेचारी को तो लगा होगा कि इस जन्म में मिलना हो या न हो और बिना माफ़ी माँगे यदि मर गये तो क्या होगा ?



५५. 'सही तरीके से गाया न जाए तो....।'

एक दिन सुबह की प्रार्थना में महादेवभाई ने 'उठ जाग मुसाफिर' भजन गाया। पर वे उसका राग भूल गये थे इसलिए उसमें दो-तीन सुरों की खिचड़ी हो गई थी।

थोड़ी देर पश्चात् बापू ने महादेवभाई से कहा, 'सही तरीके से न गाया जाए तो, कितना ही सुंदर भजन या काव्य हो, मेरे लिए वह निरर्थक हो जाता है। आज सुबह मुझे लग रहा था कि यह कब समाप्त होगा।' तत्पश्चात् झवेरचंद मेघाणी की बात याद करके बापू बोले :-

'मेघाणी कहते हैं कि उनके गीत जब वे स्वयं गाकर सुनाते हैं तभी उसका वास्तविक आनन्द लिया जा सकता है; और मैं देख रहा हूँ कि उनकी बात बिल्कुल सही है।'



५६. 'इतने घबरा क्यों गए ?'

एक बार बा और बापू नित्य नियमानुसार टहलने गये। चलते हुए बापू को ठोकर लगी और अँगूठे से खून निकलने लगा।

यह देख बापू ने बा से कहा; 'अरे ज़ल्दी से पट्टी ला कर अँगूठा बाँध दो।'

बापू को इतना अधीर होते देख बा ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा: 'आप तो कहते हैं कि आपको मरण का भय नहीं है, फिर यह जरा-सी ठेस लगी और थोड़ा-सा खून निकला, इसमें इतना घबरा क्यों गये ?'

सुनकर बापू बोले: 'इस देह पर लोगों का अधिकार है। मेरी लापरवाही से अँगूठे में पानी लगे और अँगूठा पक जाये तो सात-आठ दिन तक मेरे लिए काम करना मुश्किल हो जाए। ऐसे में लोगों का कितना नुक़सान होगा ! यह तो हम पर लोगों द्वारा सौंपे गये विश्वास का घात ही कहा जाएगा ना !'



५७. 'आज्ञा-पालन'

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना करके, उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए बापू मगनवाडी में रह रहे थे। उस समय वहाँ रहनेवालों को ही सारे काम मिल-बाँटकर करने होते थे।

एक बार बापू और श्री कुमारप्पा के हिस्से में रसोई के बर्तन माँजने का काम आया। बापू और कुमारप्पा अपने काम में उत्साह से जुट गये।

बा को जैसे ही इस बात की जानकारी मिली, वे तुरंत वहाँ पहुँच गईं और बापू को उलाहना देते हुए बोलीं : 'अरे, आप जैसे आदमी को इस काम के अलावा कोई अन्य काम-धंधा है या नहीं ? बहुत-से ज़रूरी काम हैं जो आपको करने हैं, वह कीजिए ना ! ऐसे काम करने के लिए तो बहुतेरे लोग हैं।'

लेकिन बापू तो बा की यह मीठी झिड़की सुनकर भी हँसते-हँसते बर्तन माँजने में लगे हुए थे। यह देख बा और चिढ़ गईं तथा उनके हाथों से बर्तन छीनकर माँजने लगीं।

बापू के मिट्टी से भरे हाथों में नारियल के छिलके का टुकड़ा ही रह गया। बापू हँसते-हँसते कुमारप्पा से कहने लगे, : 'कुमारप्पा, आप वास्तव में सुखी आदमी हैं क्योंकि आप पर राज्य करने के लिए आपकी पत्नी नहीं है। लेकिन मुझे तो अपने घर की शांति बनाये रखने के लिए बा की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा। इसलिए आपके काम में साथी के रूप में मेरी जगह बा को छोड़ जाऊँ तो मुझे क्षमा कीजिएगा।'

इतना कहकर अपने हाथ-पैर धोकर बापू अपने कमरे की ओर गये और बा कुमारप्पा के साथ बर्तन माँजने लगीं।



५८. 'मैं होती तो फ़र्क पड़ता'

हरिजनों के सवाल पर बापू ने १९३२ में यरवडा जेल में आमरण अनशन प्रारम्भ किया था। उस समय बा साबरमती जेल में थीं।

वे बापू के पास न थीं, इस कारण बा का मन विचलित रहता था। अपने पति की ज़िंदगी दाँव पर लगी देख बा के मन में बड़ी उथल-पुथल रहती। एक बार इसी बात पर अपनी तड़प व्यक्त करते हुए वे जेल की अन्य बहनों से कहने लगी : 'यह 'भागवत' पढ़ रही हूँ, 'रामायण', 'महाभारत' पढ़ती हूँ। इनमें कहीं ऐसे उपवास की बात नहीं है। परन्तु बापू की तो, बात ही अलग है। ये ऐसे ही करते रहते हैं, अब क्या होगा ?' बहनें उन्हें धीरज बंधाते हुए कहने लगीं : 'बा, बापू को सरकार सभी सुविधाएँ देगी, आप चिंता क्यों करती हैं ?'

तब बा बोलीं, 'बापू कोई सुविधा लें तब ना ! उनका तो हर मामले में असहयोग ! इनके जैसा आदमी तो मैंने कहीं नहीं सुना। पुराणों की बहुत-सी बातें सुनी पर ऐसा तप कहीं नहीं दिखा।'

कुछ रुककर बा फिर कहने लगीं, 'यद्यपि कुछ हर्ज नहीं है। यों महादेव हैं, वल्लभभाई हैं, सरोजिनी देवी हैं पर मैं होती तो फ़र्क पड़ता।'



५९ 'आप ? और मुझसे डरते हैं !'

साबरमती आश्रम में रसोई की ज़िम्मेदारी बा के हाथ में थी। बापू से मिलने अक्सर मेहमानों का आना-जाना लगा रहता। बा बड़े उत्साह से सब कार्य करती थीं।

त्रावणकोर से आया एक लड़का उनकी मदद के लिए था। एक बार दोपहर का सब काम निपटाकर बा रसोईघर बंद करके थोड़ा विश्राम करने गईं।

बापू कब से इसी समय की राह देख रहे थे। बा जैसे ही अपने कमरे में गईं जैसे ही फुर्ती से बापू ने उस लड़के को इशारे से अपने पास बुलाया और धीरे से कहा, 'सुन, अभी कुछ मेहमान आनेवाले हैं और सबके लिए रसोई तैयार करनी है। बा सुबह से काम करके थक गई हैं अतः उन्हें थोड़ा आराम करने दें। बा को अभी जगाना नहीं। कुसुम को रसोई में मदद करने के लिए बुला ला। कुसुम और तुम मिलकर सब काम कर डालो। चूल्हा सुलगाकर, आटा गूँधकर सब तैयार रखो। बाद में ज़रूरत पड़े तो बा को उठाना, नहीं तो तुम लोग ही सब कर लेना। और देखो, ऐसा कुछ मत करना कि बा क्रोधित हों। कुछ बिगाड़ना मत और जो चीज़ जहाँ से लो वहीं वापस ठीक से रख देना। बा यदि मुझपर गुस्सा नहीं हुई तो मैं तुम्हें शाबाशी दूँगा।'

तब उस भाई ने कुसुम बहन को बुलाकर चुपके से रसोई की तैयारी करनी शुरू कर दी। हर काम इतनी सावधानी से कर रहे थे, कि कहीं बा जग न जायें। तरकारी काट कर रखी, आटा गूँधा और चूल्हा भी सुलगा लिया। अचानक एक थाली उनके हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ी।

थाली के गिरने की आवाज़ से बा जाग गयीं। रसोई में बिल्ली तो नहीं घुस गई, यह सोच बा रसोई की ओर गयीं तो वहाँ का दृश्य देख ऊँची आवाज़ में बोलीं, 'यह सब क्या धमाल चल रही है ?'

तब दोनों ने बा से सारी बात बता दी। बा बोलीं; 'परन्तु तुम लोगों ने मुझे क्यों नहीं बुलाया ?' इतना कहकर वे रसोई तैयार करने में जुट गईं।



संध्या समय, मेहमानों के लौटने के पश्चात् बा ने बापू के पास जाकर, कमर पर हाथ रखकर उन्हें आड़े हाथों लिया 'मुझसे छिपाकर आपने बच्चों को रसोई का काम क्यों सौंपा ? क्या आपको लगा कि मैं आलसी की नानी हूँ ?' बापू झट समझ गये कि अब बा के रोष से बच निकलना कठिन है। इसलिए हँसते-हँसते बोले, 'ऐसे अवसर पर मुझे तुझसे डर लगता है, क्या तू यह नहीं जानती ?'

सुनकर बा खिलखिलाकर हँस पड़ी, मानो कह रही हों, 'आप ? और मुझसे डरते हैं !'



६०. 'बा न खाये, तो मैं खाऊँगा'

बा बहुत अच्छी पाक-शास्त्री थीं। बापू ने जबसे अपने जीवन-व्यवहार में अस्वादव्रत धारण किया तबसे बा की यह कला व्यर्थ-सी बन गई थी। फिर भी बा कुछ न कुछ बनाती तो सही। अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खिलाने और खाने का उन्हें शौक था।

बा की अंतिम बीमारी के समय भी आगाखान महल में डॉ. गिल्डर के नाश्ते के लिए मनुबहन से वे रोज़ कुछ न कुछ बनवातीं।

एक दिन बा ने मनुबहन को पूरनपोली बनाने का सुझाव दिया और कहा, 'आज तो मैं भी पूरनपोली खाऊँगी। बापू से भी पूछ आओ कि वे लेंगे क्या ?'

बा अस्वस्थ थीं, कमज़ोर थीं। यदि बा गरिष्ठ वस्तु का सेवन करें तो उनके हृदय के स्पंदन के लिए खतरनाक साबित हो सकता था। इसलिए जब मनुबहन बापू से पूछने गयी तो बा का ख्याल करके बापू ने कहा, 'यदि बा नहीं खाये, तो मैं खाऊँगा।'

बा को निर्णय करने में एक पल भी न लगा, बोली 'ठीक है, मैं नहीं खाऊँगी।'

तत्पश्चात् बा ने पास बैठकर बापू तथा अन्य सभी के लिए पूरनपोली बनवाई और सबको उत्साह से खिलाई। स्वयं ज़रा-सी चखी तक नहीं।



रावजीभाई म. पटेल

६१. 'गीताजी का गूढ़ार्थ'

मिर्ज़ापुर के बँगले में कुछ दिन रुका तो बापू ने मुझसे पूछा : 'रावजीभाई, अभी घर न जाना हो तो आश्रम में काम है। मकान बन रहे हैं। मगनलाल से संभल नहीं रहा है। आप दो-तीन महीने वहाँ रहें तो मगनलाल को राहत मिलेगी। उनकी भी माँग है ही। क्या आप वहाँ जायेंगे?'

मैंने खुशी से स्वीकार किया और आश्रम में पहुँचा। उस समय राष्ट्रीय विद्यालय के शिक्षकों के निवास बन रहे थे। हृदयकुंज वाला मकान भी बनने वाला था। कुछ दिनों के बाद गाँधीजी भी बँगले से आश्रम में आये। उन्हें आश्रम के सिवाय अन्य किसी जगह रुचता भी नहीं। दिन के समय मैं मकान से संबंधित काम जैसे उनका माप तैयार करना, साधन, सामग्री का हिसाब रखना आदि करता और रात में पहरेदारी करता। आश्रम के नज़दीक ही छारा (आदिवासी) बस्ती थी। इस कारण हमें सदा भय लगा रहता था। आश्रम में बार-बार चोरियाँ होने लगीं तो पहरेदारी करने का निश्चय किया गया। प्रतिदिन रात्रि में बारह से तीन मैं और महादेवभाई बारी-बारी से पहरा देते थे।

इस तरह काम चल रहा था कि भरुच से एक भाई आये। वे साहित्य रसिक थे, कविता करते थे। वे आश्रम में रहना चाहते थे। बापू ने उनसे बात की और पूछा, 'कहो, क्या काम करोगे?' उन्होंने कोई भी कार्य करने की इच्छा जताई। बापू ने मुझे बुलाकर कहा कि 'मकान के कार्य में इस भाई को भी अपनी सहायता के लिए रखिए।' सज्जन मेरे साथ आये। मैंने उन्हें मकान बनाने के लिए जो ईंटें आती थीं उन्हें गिनकर रखने का काम दिया और उसका हिसाब रखने को कहा। दो-चार दिन उन्होंने काम किया। पर उनकी ज़रा भी दिलचस्पी इस काम में नहीं थी। उन्हें लगा कि, 'मुझे ऐसा काम? इसमें क्या फ़ायदा? यह तो अनपढ़ मज़दूर का काम है। मैं पढ़ा-लिखा, पुस्तक लिखनेवाला, कविता कर



सकनेवाला, पर यहाँ चार दिन से उसका विचार ही स्फुरित नहीं होता। अधिक दिन यहाँ रह जाऊँ तो मैं जड़ जैसा हो जाऊँगा।' अपने विचार उन्होंने मुझसे ज़ाहिर किये तो मैंने कहा –“आपको अपने विचार बापू के सामने रखने चाहिए और उन्हीं से संतोष प्राप्त करना चाहिए।” सज्जन बापू के पास अपनी बात कहते हुए बोले कि, “मैं जब से यहाँ आया हूँ, ईंट-चूना में ही डूबा हुआ हूँ। इससे ऊपर ही नहीं आ रहा।”

बापू ने सहज भाव से मुस्कराकर कहा, 'यह तो बहुत अच्छा है, मुझे पसंद आया।'

'परन्तु बापू पढ़ने या विचार करने के लिए ज़रा भी समय नहीं मिलता है।'

उसकी ज़रूरत ही क्या है ? जब आवश्यकता होगी तब वह भी मिल जायेगा। अभी तो आप सौंपे गये कार्य में मशगूल रहिए और वाचन का मोह छोड़िए। यहाँ तो मुख्यतः शारीरिक श्रम का काम ही रहेगा और आपको जो वाचन का मोह लगा है वह छूटे तो मैं समझूँगा कि इतना तो आपने सीखा।'

सज्जन बात समझ न सके इसलिए अपनी भावना जताने के लिए बोले, 'लेकिन मेरा यहाँ आने का हेतु यह था कि आपसे 'गीताजी' पढ़ूँगा 'गीताजी' का गूढ़ार्थ समझूँगा। तत्पश्चात् 'गीताजी' पर लिखने की प्रेरणा प्राप्त करूँगा।'

उनकी भावना सुन कर बापू हँस पड़े और बोले, 'आपकी भावना 'गीताजी' का गूढ़ार्थ समझने की है, यह अच्छी बात है। और आप जो कार्य कर रहे हैं उसमें एकाग्र होने पर वह गूढ़ार्थ भी आप समझ सकेंगे। 'गीताजी' का गूढ़ार्थ तो निष्काम कर्मयोग है। फल की किसी प्रकार की तृष्णा रखे बिना हाथ में लिए कार्य में एकाग्र होकर कर्म करते रहना – यही 'गीताजी' का गूढ़ार्थ है। आप उसी प्रकार वर्तन कर रहें हैं। आप जो कार्य कर रहे हैं उसमें आपको कोई तृष्णा नहीं है, कोई स्वार्थ नहीं है। अपना कार्य आप एकाग्र होकर, योगस्थ होकर करते हैं अर्थात् आपने 'गीताजी' का पूर्ण अर्थ समझा है और उसी के अनुसार आचरण किया। इससे विशेष क्या समझना है ? यदि हमारी दिनचर्या के कार्यक्रम में ही



'गीताजी' का उपदेश आचरित होता हो, तो 'गीताजी' का वाचन करके, उस पर लिखे भाष्य पढ़कर, उस पर अपना अलग भाष्य रचने का मोह किसलिए रखें ?'

सज्जन तो यह प्रवचन सुनकर स्तब्ध रह गये। फिर थोड़ी देर में बोले, 'मैं यहाँ आकर जैसे जड़ होता जा रहा हूँ। मैं पढ़ने के लिए, विचारने के लिए, आपके पास रहकर आपसे प्रेरणा प्राप्त करने यहाँ आया। पर मुझे लगता है कि महीनों यहाँ रह लूँ तो भी इस तरह से कुछ भी न पा सकूँगा।

बापूने उन्हें समझाया : 'यहाँ का काम ही ऐसा है। जो कार्य आप करें उससे ही चेतना प्राप्त करना आपको आना चाहिए। 'गीताजी' का गूढ़ार्थ मैं भी इसी रीति से सीख पाया हूँ और दूसरों को भी इसी रीति से सिखाता हूँ।'

करीब दस दिनों में सज्जन निराश होकर लौट गए।



६२. 'सबके बापू'

कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात थी। प्रार्थना के पश्चात् 'रामायण' का पाठ और बातचीत में लगभग साढ़े आठ बज गये। कार्यक्रम समाप्त होते ही भाई देवदास पहले बाहर निकले। दरवाजे से बाहर निकलते ही एक बड़ा साँप फुफकारा। देवदास साँप को देख न पाये पर उसकी फुफकार सुनी। वे तुरंत कमरे में लौटे और बताया कि 'बाहर कुछ है, बत्ती लेकर चलो ना !' मगनलाल गाँधी और मैं लैम्प लेकर चले। बड़े ध्यान से देखने पर, साँप की बड़ी रेखा-सी लगी। थोड़ी खोज करने पर मकान कि एक ओर पानी की टंकी के पीछे एक बड़ा साँप बैठा दिखा। साँप पकड़ने के लिए हम रेशमी डोरी के फंदे वाली लाठी का उपयोग करते थ। वैसे दो फंदों को डालकर साँप को पकड़ा, खींच कर निकाला। वह इतने ज़ोर से झटके दे रहा था कि हम दो जनों ने लाठी पकड़ रखी थी फिर भी हमें धक्का लग रहा था। इतने में बापू आ पहुँचे। साँप को देखा तो बोले, 'यह तो बहुत बड़ा है। लेकिन तुम लोग डोरी कसो मत, वह हैरान हो जायेगा।' फिर कहा, 'साँप को नीचे रखो।' हमने सोचा उसे ज़ल्दी बाहर डाल आने का कहने के बदले बापू ने नीच रखने को क्यों कहा ? हमने खूब संभालकर साँप को नीचे लंबाई में रखा।

'डोरी ढीली करो, उसकी गर्दन न कस जाये।' हमने डोरी में ढील दे दी, इतनी कि साँप को निकलना हो तो निकल भी सके। तत्पश्चात् बापू ने क्या किया ? बापू ने उस आठ फीट लंबे साँप पर हाथ फेरना शुरू किया और बोले, 'कितना सुंदर प्राणी है ! बापू के हृदय में उस वक़्त इस ज़हरीले जानवर के प्रति कैसे भाव रहे होंगे ? मानो बालक के सिर पर उसके पिता प्रेमभरा हाथ फ़ेरा कर उसे आश्वस्त कर रहे हों। बापू ने दो-तीन बार उसके शरीर पर हाथ फ़ेरा। वह भयंकर उपद्रवी साँप जो दो-एक मिनट पहले तक अपनी झकझोर से हमें थका रहा था। अब अपने बापू के स्नेह-भरे मधुर स्पर्श पर लट्ट (२२९) हो गया, डंक मारने का स्वभाव बिसर गया, सारा रोष उतर गया और प्रेम की मोहिनी के वश हो पूँछ हिलाता पड़ा रहा।



कुछ क्षण यों ही बीते फिर बापू उठे और बोले, 'जाओ, तुम दोनों इसे संभालकर उठाना और दूर छोड़ आना।' हमने साँप को उठाया कि वह फिर से उपद्रव करने

लगा मानो उसे उस मधुर-पाश से छूटना अच्छा नहीं लग रहा था। हम उसे पास के सोते में धीरे से छोड़ आये। वह चला गया।



हरिप्रसाद व्र. देसाई

६३. 'नयी पीढ़ी जमानी है'

श्री जीवनलालभाई के कोचरब के बँगले में सत्याग्रह आश्रम की छोटी-गी शुरूआत हुई। मैं प्रतिदिन संध्या समय सैर के लिए जाता था। अबसे सत्याग्रह आश्रम ही मेरा रोज़ का प्रिय स्थान बन गया।

गाँधीजी के साथ वहाँ अनेक विषयों पर विस्तार से बातें होती थीं। आरोग्य, खुराक, धर्म, राज्य, साहित्य, खेती, बुनाई, समाज-सुधार, शिक्षा, सेवा आदि विषयों पर ढेर बातें करने का उन्हें उन दिनों अवकाश था। वे अभी महात्मा नहीं बने थे और देश की प्रवृत्तियों में उनका क्या स्थान है – यह विचार कर रहे थे। वर्ष तक देश का अवलोकन करने की सलाह गोखले ने उन्हें दी थी और तब तक सार्वजनिक रूप से एक भी भाषण न देने की आज्ञा भी थी। जिस दिन गोखले की आज्ञा का एक वर्ष पूरा हुआ, उस दिन मैं गाँधीजी के पास था। मैंने पूछा : "अब आप यह कहिए, देश में आपने क्या देखा ?"

गाँधीजी (गहरी साँस भर कर) : 'हर ओर नाटक चल रहा है। देश के लिए मरने को कोई तैयार नहीं।'

मेरा हृदय बिँध गया, फिर भी मैंने पूछा: 'यह आप क्या कह रहे हैं ? लोकमान्य, मालवीयजी, बंगाली नेतागण, इन सबसे आप मिले हैं, फिर भी ऐसा कहते हैं ?'

गाँधीजी: मैं बहुत खिन्न हूँ। बड़े लोगों के लिए कहने में मुझे दुख हो रहा है। परन्तु बहुत विचार करके ही मैंने कहा है।'

मैंने कहा: 'और वे बम फेंकनेवाले ? क्या वे भी मरने के लिए तैयार नहीं ?'

गाँधीजी : 'वे अवश्य अपवाद हैं। वे मरने के लिए तैयार हैं, पर उनकी रीति मुझे पसंद नहीं है।'



तत्पश्चात् शांति के मार्ग पर, किसी का खून बहाने के जंगली मार्ग के विरुद्ध, बिना मारे अपने अहिंसावाद की चर्चा की और बोले: 'यदि देश मेरा रास्ता स्वीकारे तो उसे बताते हुए मैं उम्मीद रखता हूँ कि इस मार्ग से स्वराज्य प्राप्त हो सकेगा। दक्षिण अफ्रिका में जो हुआ वह यहाँ भी हो सकता है। मैं वहाँ की पूँजी पर नहीं जीना चाहता। अब मुझे नयी पूँजी प्राप्त करके नयी पीढ़ी जमानी है।'



गुणवंत शाह

६४. 'जटायु जीवंत हुआ'

'रामायण' में जटायु मेरा सबसे प्रिय पात्र है। मुझे राम से भी अधिक प्रिय पात्र लगता है जटायु। आज हम जिन समस्याओं से गुज़र रहे हैं उनका हल केवल जटायु के पास है। तो सुनिए यह जटायु कीन है ?

जटायु के लिये मैंने (पारकी छट्टी नो जागतल) 'दूसरों की तकलीफ़ को देख खुद परेशानी मोल लेनेवाला' शब्द का प्रयोग किया है।

सीता के अपहरण के समय जब जटायु अपना बलिदान देने तत्पर हुआ, तब गिद्ध समाज के व्यावहारिक लोगों ने उससे कहा होगा कि, 'जटायु ! राम और रावण की तक़रार में तू क्यों पड़ रहा है ? वे बड़े और बलवान लोग हैं, इनमें तेरा पता भी न चलेगा। कहाँ रावण और कहाँ तू ? थोड़ा विचार तो कर !'

तब जटायु ने उन बुजुर्गों को जवाब दिया :

मेरे जीते जी रावण सीता का अपहरण नहीं कर सकता। मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता। और जटायु भिड़ गया।

गाँधीजी के जाने के बाद समाज की जटायु वृत्ति ख़त्म हो गई है। इस समाज का अब एक ध्रुव-वाक्य है 'कि इसमें हम क्या कर सकते हैं ?'

गाँधीजी चंपारन गये। चंपारन में यह कह सकते थे कि हम तो अब क्या कर सकते हैं ? वारडोली गये, तब भी कह सकते कि इसमें हम क्या कर सकते हैं ? किसान के महसूल का प्रश्न है इसमें हम बीच में कहाँ आयेंगे ? तो 'हम इसमें क्या कर सकते हैं ?' कहते-कहते ही गाँधीजी विदा हो गये होते।



अंग्रेजों के राज में ऐसा ही था कि बहुत-से लोग बोलते कि अंग्रेज़ सरकार के सामने हमारी क्या गति ! परन्तु इसी देश में मिट्टी से मर्द बनाये गाँधी ने। यह बिल्कुल निर्वीर्य समाज था जिसमें गाँधी ने इस प्रकार काम किया कि उसमें जटायु जीवंत हो गया।



महेन्द्र मेघाणी

६५. 'बिखरी महफ़िल के पतंगे'

महावीर त्यागी की दो छोटी-छोटी पुस्तकों के गुजराती अनुवाद का पुनर्मुद्रण अभी ही प्रकाशित हुआ है। इन दोनों पुस्तकों के नाम हैं : 'नगाड़खाने में तूती की आवाज़ (तीसरी आवृत्ति) और स्वराज की लड़ाई के वे दिन' (चौथी आवृत्ति)। दोनों पुस्तकों का मूल हिन्दी में प्रकाशित हुआ था। दोनों ही पुस्तकों में लेखक के जीवन के संस्मरण हैं। एक में १३२ पृष्ठ हैं और दूसरी में १५२ पृष्ठ। इनमें से कम पृष्ठोंवाली 'स्वराज की लड़ाई के वे दिन' को मैंने पहले उठायी और उसके १४ प्रकरण को अंत से पढ़ना प्रारम्भ किया। पढ़ते-पढ़ते आँखें भीगती रही और मुँह पर मुक्त हास्य भी बिखरता रहा।

जो पाठक महावीर त्यागी के नाम से परिचित नहीं है, उनके लिए 'स्वराज की लड़ाई के वे दिन' पुस्तक के कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ :

किसी अलौकिक रागिनी के आरोहण के स्वरों पर मंत्रमुग्ध होकर नाचनेवाले हम मतवालों ने तीस वर्ष तक निरंतर इस महानृत्य के ताल के साथ अपने हृदय की धड़कन को बाँध लिया था। संसार की समस्त शक्तियों को दरकिनार कर हम इस संगीत में मस्त बन कर झूमते थे।

परंतु अब पहले जैसी मस्ती नहीं है, वैसी तरंग और धुन नहीं। जिस तरह दीपशिखा बुझ जाने पर पतंगों की महफ़िल बिखर जाती है – बिल्कुल उसी प्रकार हमारी महफ़िल भी बहक गई है। बापू के बिना कांग्रेस जैसे बिना राग का स्वर है। पिछले चालीस वर्षों में हमने क्या-क्या किया, यह भी पूरा याद नहीं है। जो कुछ किया मानो किसी नशे की मस्ती में किया था। उसमें मुश्किलें थीं पर हम हँसले-खेलते काम करते रहे।

अब स्वराज के कारण हमारे अधिकांश कांग्रेसी बेघर और बेरोजगार हो गये हैं। जिस मालिक ने हमें पाला था, वह नहीं रहा। उसकी चुटकी बजते हमारे कान खड़े हो जाते थे,



उसकी सीटी बजे कि कूद जाते थे, दौड़ते थे। उसके चेहरे की स्मित देखकर लट्टू बन जाते थे। अब हमारे गले से पट्टा निकल गया है और अनाथ बनकर इधर-उधर पूँछ हिलाते फिरते हैं। अब न कोई चुटकी बजाता है, न कोई उत्साहित, व प्रेरित करता है।

जब अंग्रेज़ थे, तब हमें प्रतिदिन कोई न कोई काम मिल जाता था। कुछ न हो तो प्रभातफेरी निकालते। जहाँ दस जन दिखे कि अखबार पढ़कर समाचार सुनाते। दूर से देखकर ही लोग हमारा स्वागत करते। पास आने पर पूछते, 'कहिए, आजकल महात्मा गाँधी क्या कर रहे हैं ? आपको तो अच्छी तरह पहचानते हैं।' बहुत उत्साह से मैं उनकी बातें करता। गाँधीजी की बातें करते हुए मैं कभी थकता नहीं। परन्तु अब तो ये समस्त बातें स्वप्न-सी बन गई हैं। अंग्रेज़ों के जाने के बाद उनके बावर्ची आदि बेकार हो गये, वैसे ही कांग्रेस के कार्यकर्ता भी कार्यरहित हो गये हैं।

याद कर-कर के, गिन-गिन कर हर-एक नेता का दरवाज़ा मैं खटखटा आया हूँ –कि कोई मदद करे तो मैं भी किसी काम में लग जाऊँ। लेकिन नेताओं के पास ओहदे, परमिट, लाइसेंस, वज़ीफ़ा आदि बहुत हैं पर काम नहीं है।



६६. 'गाँधी-हृदय में पड़ी छवियाँ'

गाँधीजी जैसे कठोर व्रतधारी ने लिखा है कि 'केवल व्रत पालने से पार नहीं उतर सकते। सतत कीर्तन चले तो व्रत फलते हैं। उत्तम जीवन-चरित्रों को पढ़ते रहें तो बल मिलता है।' इस महापुरुष के हृदय में कैसे-कैसे नर-नारियों की छाप पड़ी होगी, उसका वर्णन यदि कोई 'अक्षर देह' के सौ खण्डों में भी करे तो बहुसंख्य वाचक – समुदाय की उसमें दिलचस्पी होगी और उन्हें बल मिलेगा। परन्तु यहाँ गाँधीजी की 'आत्मकथा' में तितर-बितर पड़ी छवियों पर ज़रा नज़र डालते हैं।

*

जगत में बालक का प्रथम परिचय माता से होता है। माता पुतलीबाई का चित्र गाँधीजी ने दो वाक्यों में उपस्थित किया है : 'माता साध्वी स्त्री थीं। वे बहुत श्रद्धालु थीं, कठिन से कठिन व्रतों को धारण करतीं और लिया हुआ व्रत अस्वस्थ होने पर भी नहीं छोड़ती थीं।'

करमचंद गाँधी के विषय में वे कहते हैं : 'पिता कुटुम्बप्रेमी, सत्यप्रिय, शूर, उदार परन्तु क्रोधी थे। कुछ विषयों के बारे में आसक्त भी होंगे। पिता के पास शिक्षा के नाम पर केवल अनुभव थे। फिर भी उन्हें व्यवहार-ज्ञान इतना उच्च प्रकार का था कि सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रश्नों को हल करने में या हज़ारों लोगों से काम लेने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं आती थी।'

बालक मोहन को प्रभावित करनेवालों में उनकी दाई रंभाबाई सम्भवतः तीसरा व्यक्ति नज़र आता है। मोहन भूत-प्रेत से डरता था। इसकी औषधि रामनाम है – यह रंभा ने ही उसे समझाया। मोहन को तो रामनाम से अधिक रंभा पर श्रद्धा थी। जो बीज बचपन में रोपा गया, वह जला नहीं, वरन् वह बीज रूप 'रामनाम' जीवनभर गाँधीजी के लिए अमोघ शक्ति बना रहा।



केशुभाई भावसार

६७. 'यह समन्वय'

१९४१ में कांग्रेस कार्यकारिणी की एक बैठक वर्धा में हुई। मैं उस समय पास के सेवाग्राम में खादी विद्यालय में पढ़ाई कर रहा था, इसलिए मुझे जानने-देखने का अवसर मिल गया। वहाँ मैंने देखा कि कांग्रेस प्रमुख श्री अबुल कलाम आज़ाद मंच की बैठक पर लेटे-लेटे सिगरेट के कश खींच रहे थे। पास ही बैठे हुए गाँधीजी एकाग्रता से चरखा चला रहे थे। इस दृश्य को देखते ही मेरे दिल में गहरा आघात लगा। ऐसी सभा में लेटे हुए कांग्रेस प्रमुख के सिगरेट पीने में मुझे प्रजा का अपमान लगा। गाँधीजी लोगों को सादा, संयमी और मेहनती बनाकर सत्य और अहिंसा की सीख देने का प्रयास कर रहे थे। उनका एक अदना सैनिक बनने की आकांक्षा मेरे जैसे अनेक लोगों में थी। इस दृश्य से मेरे दिल में फाँस गड़ गई, परन्तु उस समय मैं ग़म खाकर रह गया।

बाद में, १९४२ के आंदोलन में, जेल गया। वहाँ मौलाना आज़ाद की 'कुरान' पर लिखी पुस्तक पढ़ी, तब उनकी विद्वत्ता और उच्च भावना के समक्ष मेरा मस्तक झुक गया। मुझे यह भी लगा कि ऐसे महान प्रतिभावाने पुरुष निर्व्यसनी और सादा जीवन जीते हों तो कितना अच्छा !

दूसरी ओर निर्व्यसनी और श्रमजीवी लोगों को देखता हूँ, तब मेरे मन में यह भाव भी जगता है कि इनमें मौलाना आज़ाद जैसी निडरता, देश के लिए कुर्बान होने और समानता की भावना होती तो कितना अच्छा होता। देश के लिए कष्ट सहन करने में उदार और अनुदार दृष्टिवाले लाखों लोग भले ही सादे और संयमी हों पर क्या उससे गाँधीजी का स्वप्न साकार होगा ?

आज विचार करने पर प्रतीत होता है कि दोनों प्रकार के लोगों के समन्वय के लिए गाँधीजी अत्यधिक कोशिश करते रहे। अबुल-कलाम आजाद के व्यसन को उन्होंने नज़रअंदाज़



कर दिया, वैसे ही हमारे जैसे संयमी जीवन जीनेवाले, परंतु एक-दूसरे को ज़रा भी सहन न कर सकने वाले घमण्डी कार्यकर्ताओं को भी निभाया। इन दोनों प्रकार के लोगों का समन्वय अभी हमें करना है। जीवन सादा, स्वावलंबी और निर्व्यसनी तो हो ही, पर साथ-साथ निडरता, उदारता और करोड़ों दुखी, अज्ञान लोगों के लिए स्वयं को खपा देने की भावना – यह सब समग्र रूप से जब हमारे जीवन में विकसित होंगे तभी हम सच्ची आज़ादी पायेंगे।



मनुबहन गाँधी

६८. 'कहने की अपेक्षा करना अच्छा'

बापू सदैव स्वच्छता के प्रति विशेष आग्रह रखते थे। अस्वच्छता के लिए बार-बार सामनेवाले को टोकने की अपेक्षा स्वयं कार्य करके दूसरों को स्वच्छता का पाठ पढ़ाते थे।

नोआखली में पगडंडियाँ बहुत छोटी थीं। कोई-कोई रास्ता तो इतना संकरा होता कि बापू अकेले ही पगडंडी पर चल सकते थे और मुझे पीछे-पीछे चलना पड़ता। इस कारण उन्हें मेरा सहारा नहीं मिलता तो दूसरी ओर सहारे के लिए लाठी रखनी पड़ती।

इधर-उधर गंदगी फैली हो, यह बापू को बहुत अखरता। ऐसे गंदे रास्ते पर उन्हें नंगे पैर चलना पड़ता। चारों ओर फैले मल, थूक, कचरे आदि को आस-पास से पत्ते उठाकर जब बापू स्वयं साफ़ करने लग गये, तो मैं कुछ देर तक स्तंभित रह गई।

मैंने गुस्से में बापू से कहा: 'बापू, आप मुझे क्यों शर्मिन्दा कर रहे हैं ? मैं यहीं आपके पीछे-पीछे हूँ, फिर भी मुझ कहने के बदले आपने खुद क्यों साफ़ किया ?'

इसके उत्तर में बापू हँसते हुए बोले, 'तुझे क्या पता कि मुझे ऐसे काम करने में कितना आनन्द आता है ? किसी से कहने के बदले मैं स्वयं कर दूँ तो मेरी तकलीफ़ कितनी कम हो जाए।'

मैंने कहा, 'परन्तु इस गाँव के लोग देख रहे हैं।' बापू बोले, 'तू देखना, कल से मुझे ऐसे गंदे रास्ते साफ़ नहीं करने पड़ेंगे। क्योंकि लोगों को इससे यह सबक मिलेगा कि यह तुच्छ काम नहीं है।'

मैं बोली, 'मान लीजिए कि सिर्फ़ कल तक के लिए वे साफ़ करें, फिर वैसी ही गंदगी बनी रहे तो आप क्या करेंगे ?'

उन्होंने उल्टे मुझे ही पकड़ा और बोले : मैं तुझे देखने के लिए भैजूँगा और फिर से रास्ता गंदा हुआ तो साफ़ करने आऊँगा।'



सचमुच ऐसा ही हुआ। दूसरे दिन जब मैं देखने गई तो रास्ता वैसा ही गंदा था। परन्तु बापू को कहने न जाकर, मैंने स्वयं साफ़ किया और लौटी, बापू से कहा, 'मैं रास्ता साफ़ कर आई। मेरे साथ गाँव के लोग भी थे और आज तो उन्होंने वचन दिया है कि कल से आप मत आइए, हम स्वयं ही साफ़ करेंगे।'

बापू बोले, 'तूने मेरा पुण्य ले लिया। यह रास्ता मुझे ही साफ़ करना चाहिए था। पर ठीक है। अब दो काम हो गये : एक तो स्वच्छता बनी रहेगी और दूसरे लोग अपना दिया वचन पालेंगे तो सत्यता सीखेंगे।'

और वह रास्ता सदा के लिए साफ़ रहा।



६९. 'रेल के डिब्बे के) दो विभाग का परिग्रह'

नोआखली और बिहार की आग में कूदने के पश्चात् ३० मार्च १९४७ को बापू का लार्ड माउण्टबेटन से भेंट करने जाना तय हुआ। वायसराय तो चाहते थे कि बापू विमानयात्रा करके उन तक पहुँचें परन्तु बापू ने यह कह कर इन्कार किया कि 'जिस वाहन में करोड़ों गरीब यात्रा नहीं कर सकते, उसमें मैं कैसे बैठ सकता हूँ?' तथा 'ट्रेन में भी मैं अपना काम अच्छी तरह कर लेता हूँ, अतः मैं रेलगाड़ी से ही आऊँगा।' ऐसा निश्चय कर लिया।

असह्य गर्मी थी। चौबीस घंटे का लंबा सफ़र था। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, 'कम से कम सामान रखना और छोटे-से-छोटा तीसरे वर्ग का डिब्बा (कम्पार्टमेंट) चुनना।'

मैंने सामान तो कम से कम लिया। परन्तु हर स्टेशन पर बापू के दर्शनार्थियों की इतनी भीड़ जुटेगी कि उन्हें घड़ी भर आराम नहीं मिलेगा – यह सोचकर मैंने दो विभाग वाला डिब्बा पसंद किया। एक में सामान रखवाया और दूसरा बापू के बैठने, सोने के लिए रखा।

पटना से दिल्ली के लिए ट्रेन सुबह ९.३० बजे रवाना होती है। गरमी के मौसम में बापू दोपहर का भोजन १० बजे लेते थे। मैंने दूसरे हिस्से में जाकर सामान खोला और बापू के लिए खाना तैयार करने लगी। कुछ देर बाद बापू वाले हिस्से में आई। बापू लिखने में रत थे। मुझसे पूछा, 'कहाँ थी?' मैंने कहा, 'यहीं, भोजन तैयार कर रही थी।'

उन्होंने मुझे खिड़की से बाहर नज़र डालने के लिए कहा। मैंने बाहर देखा तो लोग लटक रहे थे। मुझे मीठी झिड़की मिली : 'इस दूसरे हिस्से के लिए तुमने कहा था?'

मैं बोली : 'हाँ बापू! मैं यहीं पर सब काम-काज करूँ-स्टोव पर दूध गर्म करूँ, बर्तन साफ़ करूँ तो इससे आपको तकलीफ़ होगी – यह सोचकर मैंने दो विभागवाला डिब्बा लिया।'

'कैसी लचर सफ़ाई दे रही है ! अंधा प्रेम इसी का नाम है। तुझे मालूम है कि मुझे तकलीफ़ न हो इसलिए हवाईजहाज़ के उपरांत विशेष ट्रेन के लिए भी कहा गया। एक स्पेशल ट्रेन के कारण कितनी गाड़ियाँ रोक दी जाती हैं और कितने हज़ारों का खर्च पड़ जाता है ? यह



मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं जानता हूँ तूने यह सब मेरे प्रति अत्यन्त प्रेम के कारण किया है। परन्तु मैं तुझे ऊँचाई की ओर ले जाना चाहता हूँ, नीचे की ओर नहीं – यह तुझे समझना चाहिए। यदि समझी हो, तो मेरे कहने पर जो तेरी आँखों से पानी गिर रहा है वह नहीं गिरना चाहिए। अब इसका प्रायश्चित्त यही है कि तू सारा सामान इधर खिसका ले और अगले स्टेशन पर स्टेशन-मास्टर को मेरे पास बुलाना।

मैं थरथर काँप रही थी। सामान तो खिसकाया पर बापू की चिंता हो रही थी कि अब कैसे होगा लिखना, पढ़ना, मिट्टी लेना, कातना और मुझे पढ़ाना आदि सभी काम ? जितना घर बैठे करते हैं उतना ही ट्रेन के सफ़र में भी जारी रहता है।

स्टेशन आया। स्टेशन-मास्टर को बुलवाया। बापू ने उसे मेरा पराक्रम सुनाया, 'यह मेरी पौत्री है, पर बहुत भोलीभाली है। कदाचित् अभी तक मुझे समझ नहीं सकी है, इसीलिए दो विभाग का डिब्बा चुना। इसमें इसका दोष भी नहीं है, दोष मेरा ही है। मेरी शिक्षा में कमी रह गई है ना ? अब मुझे और इसे, दोनों को प्रायश्चित्त करना होगा। दूसरा हिस्सा खाली कर दिया है, इसका उपयोग आप उन यात्रियों के लिए कर लीजिए जो बाहर लटक रहे हैं तो मेरा दुख कुछ हलका होगा।'

स्टेशन-मास्टर ने बड़ी नम्रता से आग्रह किया पर बापू कहाँ माननेवाले थे। स्टेशन-मास्टर ने यहाँ तक कहा कि 'इन लोगों के लिए मैं दूसरा डिब्बा जुड़वा देता हूँ।'

बापू बोले: 'दूसरा डिब्बा तो जोड़ना ही चाहिए, पर इस हिस्से का भी उपयोग कर लीजिए। मिल रहा है इसलिए आवश्यकता के बिना अधिक लेने में हिंसा है। प्राप्त सुविधा का दुरुपयोग करवा कर आप इस लड़की को बिगाड़ना चाहते हैं ?'

बेचारा स्टेशन-मास्टर खिसिया गया और उसे अंत में बापू का कहा मानना पड़ा।



आदम घोड़ीवाला

७०. 'क्या हम प्रासंगिक हैं ?'

क्या गाँधीजी आज के युग में प्रासंगिक हैं ? यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है। गाँधीजी प्रासंगिक हैं या नहीं – यह मूल प्रश्न नहीं है। असल सवाल है कि क्या हम स्वयं, अभी और यहाँ प्रासंगिक हैं ?

आज के एकमात्र 'सुपरपावर' की वैश्वीकरण और मुक्तबाजार की नीति से हमारे गरीब देशबांधवों की, गरीबों की दुर्दशा हो रही है – यह लगने या मान्य करने पर भी, आज के किसी प्रासंगिक दिखनेवाले, तथाकथित महात्मा में इतनी नैतिक हिम्मत है कि 'सुपर पावर' के समक्ष कह सकें कि हमारे गरीबों को छाछ-रोटी मिलने दो। तुम्हारा पिट्ज़ा, बर्गर, कोकाकोला और पेप्सी हमारे सिर पर मत थोपो। हिम्मतवान के लिए गाँधीजी आज भी प्रासंगिक हैं। बुज़दिल, डरपोक के लिए गाँधी तब भी प्रासंगिक न थे, आज भी नहीं हैं।



जगदीश चावडा

७१. 'आफ़ताब' (सूर्य)

परीक्षित भाई कभी ख़ाली नहीं बैठते थे। त्यौहार हो या रविवार, उनके लिए सभी वार समान। हँसले-हँसते वे कहते, 'त्यौहार या रविवार के दिन क्या हम खाते नहीं ? तो फिर काम क्यों बंद किया जाये ?'

सुबह पाँच बजे से रात के दस और कभी-कभी तो ग्यारह बजे तक काम में लगे रहते। गाँव के मैले-कुचैले मुलाक़ाती उनके आस-पास घिरे रहते। कार्यालय में हों या सोने के कमरे में, प्रवास में हों या गाड़ी में, मुलाक़ातियों की माला जारी रहती। 'आओ, कैसे आये भाई !' कहकर वे सभी का स्वागत करते।

आश्रम में रहने पर, हरिजन सेवक संघ के दफ़्तर में सुबह सात से शाम के पाँच बजे तक सातों दिन बैठते थे। एक दिन बात से बात निकली और उन्होंने पूछा, 'अपने यहाँ होली की छुट्टी होती है क्या ? छुट्टियों की सूची देखकर मैंने कहा : 'होली और धुलेंडी, दो दिन की छुट्टी है।'

'क्या ? दो दिन की छुट्टी होती है ?' आश्चर्य से उन्होंने पूछा। तत्पश्चात् कार्यालय के सभी कार्यकर्ताओं को सुनाई दे, इस प्रकार ऊँचे स्वर में एक प्रसंग कहने लगे :

'बापू ने कभी कोई त्यौहार या रविवार का पालन नहीं किया। जब वे यरवडा जेल में थे तब अपनी हमेशा की आदत के अनुरूप ज़ल्दी उठते, प्रार्थना करते, कातते, अध्ययन करते। उनका एक चौकीदार एडनवासी सोमाली था। वह न अंग्रेज़ी जानता, न हिंदी। अक्सर बापू के पास प्रार्थना के समय बैठता। बापू सूत कातते तो उन्हें देखता रहता।'

'उस दौरान बापू को बहुत सर्दी हो गई। फिर भी रोज़ के नियत कार्यक्रम के अनुसार बापू सुबह ज़ल्दी उठकर अपने सारे काम करते। सोमाली ने यह देखा तो बापू के पास जाकर अपनी भाषा में कुछ कहने लगा। लेकिन बापू उसकी भाषा नहीं जानते थे। अंत में उसने



संकेत से उन्हें आराम करने के लिए कहा। बापू समझ गये और सिर पर तपते सूर्य की ओर संकेत करते हुए बोले : 'आफ़ताब, आफ़ताब | चतुर सोमाली बापू की बात इशारे में समझ गया कि 'जैसे सूरज आराम नहीं करता वैसे ही मनुष्य को भी काम करना चाहिए।' प्रसंग पूरा होते ही परीक्षितभाई हँसते हुए अपने काम में लग गये।



जुगताराम दवे

७२. 'आश्रम-जीवन'

अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे गाँधीजी का आश्रम है।

आश्रम में गाँधीजी रहते, कस्तूरबा रहती और बहुत-से भाई-बहनें बालक-बालिकाएँ रहती थीं। उनमें गुजरात के थे, महाराष्ट्र के थे, पंजाब के थे, सिंध के थे, मद्रास के थे, नेपाल के भी थे, हिंदुस्तान के थे और हिंदुस्तान के बाहर के गोरे और चीनी भी आकर रहते थे।

वे सब खादी पहनते और नियमित चरखा चलाते। सुबह चार बजे उठकर प्रार्थना के लिए एकत्रित होने तथा फिर संध्या समय भी प्रार्थना के लिए मिलते। वे श्लोक पढ़ते, भजन गाते और रामधुन लगाते, कभी 'गीता' का पारायण भी करते। प्रार्थना के पश्चात् गाँधीजी प्रवचन करते।

आश्रम की विशाल रसोई आश्रमवासी बहनें ही चलातीं, वे बारी-बारी से रसोई पकातीं और कोठार में अनाज साफ़ करतीं। समग्र आश्रम एक ही रसोई में भोजन करता था। इस रसोई में मिर्च-मसाला, हींग बघार आदि नहीं होता था। सादा और स्वच्छ भोजन बनाया जाता। गाँधीजी स्वयं परोसते। आश्रम में हरिजन सबके साथ रहते और सभी के साथ आश्रम की रसोई में काम करते तथा भोजन ग्रहण करते।

आश्रम में स्वच्छता का बहुत ध्यान रखा जाता था। आश्रमवासी स्वयं पाखाने की सफ़ाई करते थे।



७३. 'डिब्बा ही घर--डिब्बा ही आश्रम

वडोदरा के गायकवाड़ अपने ध्वज पर अपनी मुद्रा 'ज़ीन घर-ज़ीन तख्त' अंकित करते थे। मराठा सरदारों को बड़ा अभिमान था कि उनके घोड़े पर रातदिन ज़ीन कसी ही रहती है। इसी प्रकार गाँधीजी का घर या आश्रम, जो कहिए रेलगाड़ी की तीसरी श्रेणी का डिब्बा बन गया था। अपना संदेश देश के एक कोने से दूसरे छोर तक फैलाने के लिए वे घूमते ही रहते और इस तरह उन्होंने इतनी बार चक्कर लगाया था कि यह कहना मुश्किल है कि उन्होंने रेलगाड़ी पर अधिक समय व्यतीत किया या आश्रम में। अतः रेलगाड़ी का डिब्बा ही उनका घर और वही उनका आश्रम, कहने में क्या ग़लती है ?

गाँधीजी रेल के डिब्बे को घर मानकर ही उसमें अपने समस्त काम-काज जारी रखते थे। डिब्बे में चरखा चलाते, सुबह-शाम प्रार्थना करते, पत्र-व्यवहार चलाते, मुलाक़ात करते आदि सब डिब्बे में।

गाँधीजी हमेशा तृतीय श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करते। तीसरी श्रेणी के मुसाफ़िरों की तकलीफ़ का अनुभव करते हुए गाँधीजी को संतोष होता था। जब महात्मा के रूप में उन्हें देश में ख्याति नहीं मिली थी तब ऐसी कठिनाइयों का स्वाद चखने के अवसर उन्हें बहुत मिलते थे। बहुत बार उन्हें खड़े रहना पड़ता। कभी-कभी तो धक्का भी खाना पड़ता। उस काल में भी देश के नेता प्रजा से दूर-दूर रहते थे और कंगाल तथा मैलीकुचैली जनता से मिलने में शर्म महसूस करते थे। बड़े ओहदेदारों की भाँति वे भी ऊँची श्रेणी में ही यात्रा करते थे।

एक बार कलकत्ते में गाँधीजी गोखलेजी के घर ठहरे थे। विदाई के समय गोखलेजी उन्हें स्टेशन तक विदा देने के लिए निकले। गाँधीजी ने विनयपूर्वक उन्हें तकलीफ़ न उठाने को कहा। परन्तु गोखलेजी न माने। उन्होंने कहा, 'यदि आप अन्य लोगों की भाँति ऊँची श्रेणी में यात्रा करनेवाले होते तो मैं न आता, पर आप तीसरी श्रेणी में बैठेंगे इसलिए मुझे विदाई देने आना ही चाहिए।'



तीसरी श्रेणी की कठिनाइयाँ भोगते हुए गाँधीजी को अपने देश की दीन-हीन प्रजा का पूरा परिचय जानने का अवसर मिला। प्रजा का स्वभाव, प्रजा की दुर्बलताएँ, प्रजा की आदतें उनकी रग-रग वे जान सके। प्रजा की नब्ज़ जितनी गाँधीजी ने परखी उतनी शायद ही कोई अन्य नेता परख सके होंगे। इसी कारण गाँधीजी पर प्रजा की गहरी श्रद्धा हो गई थी।



७४. 'आनंदी सत्याग्रही'

बारडोली और गुजरात के श्रेष्ठ सत्याग्रही स्यादलावासी किसान मोरारभाई बड़े विनोदी थे। चाहे जैसी आफ़त हो उनके पास आनंदरूप बन जाती। सत्याग्रह की लंबी जेलयात्राओं में मेरे जैसे कितने ही साथियों को उन्होंने हँसते-हँसाते जेल की अवधि कटवा दी। गाँव से कितने ही लोग तकरार लेकर उनके पास आते, उन्हें हँसा-खिलाकर एक-दूसरे से मिलाकर वे उन्हें विदा करते।

संतति के लिए वृद्ध पिता ने उनकी दूसरी शादी करवाई। हमारे जैसे कार्यकर्ताओं की सीख हँसी में उड़ाकर वे दूसरी बार लग्न कर आये। पहली ने नयी को अपनी बेटी की भाँति रखा, अतः सौत का क्लेश उनके घर में हुआ ही नहीं।

एक बार गाँधीजी के पास हल्की-फुल्की विनोदी बातें हो रहीं थीं। महादेवभाई ने मोरारभाई की दो पत्नियों की चुगली बापू से की। बापू ने मोरारभाई से पूछा, 'आप राम को नहीं मानते ?' मोरारभाई बोले : "बापू! राम को मानते हैं तो उनके पिता को कैसे न माने ?'

बापू हँस पड़े।

मोरारभाई के आनंदी स्वभाव से स्वराज की लड़ाई बहुतों के लिए आसान-सी बन गई थी। स्वराज्य के पश्चात् कुछ ही वर्षों में वे स्वर्गवासी हुए। परन्तु सर्वोदय की रचना के महान त्याग को सरल भाव देने के लिए उनकी बहुत ज़रूरत थी।



जोसेफ डोक

७५. 'कथानायक'

१९०७ दिसम्बर के अंतिम दिनों में मैंने गाँधीजी को देखा। एशियाई लोगों के इस नेता से मिलने का मैंने निश्चय किया।

रिसिक और ऐन्डरसन स्ट्रीट के कोने में उनका दफ़्तर अन्य दफ़्तरों जैसा ही था। एक छोटी, दुबली-पतली पर चपल मूर्ति मेरे समक्ष आकर खड़ी हुई। उसकी चमड़ी का रंग श्याम था, आँखें भी काली थीं परन्तु चेहरे में खिली स्मित और सीधी निर्भीक दृष्टि सामनेवाले को देखते ही जीत लेनेवाली थी। उसकी उम्र लगभग अड़तीस वर्ष की रही होगी पर सिर में इधर-उधर चमकती रुपहली रेखाएँ उसके काम के भारी बोझ की चुगली कर रही थीं। वह निखालिस अंग्रेज़ी बोल रहा था और बर्ताव बताता था कि वह अत्यन्त संस्कारी है।

मुझे आसन प्रदान कर उसने मुझसे मुलाक़ात का हेतु पूछा। मैं इस विषय में उससे कहने लगा तो वह बड़े ध्यान से सुनता रहा। मेरा कहना समाप्त होने पर उसने एशियाई लोगों की स्थिति से संबंधित मुद्दे बहुत संक्षेप में, कम वाक्यों में पर अति स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर दिये। इतने स्पष्ट और सीधे रूप में कि सामने रखनेवाले वाक्य मैंने पहली बार ही सुने थे। उसने छोटी-से-छोटी बात का धैर्य से विश्लेषण किया और बड़े धीरज तथा स्पष्टता से उसने अपनी बात मेरे गले उतारी।

उसके अंदर स्थित शांत स्वस्थ व्यक्ति में हृदय की महानता और पारदर्शक प्रामाणिकता के मुझे दर्शन हुए, जिससे हिंद के इस नेता के प्रति मैं बहुत आकर्षित हुआ। जब हम बिछड़े तो हम दोनों के बीच मित्रता की गाँठ बंध चुकी थी।



जीवतराम कृपालानी

७६. 'क्या गाँधीजी आधुनिक थे ?'

सत्य से जुड़े रहना और नीति, नियमों को सर्वोपरि मानना यदि आधुनिकता का लक्षण हो तो गाँधीजी आधुनिक थे।

वचन का पालन करना और ली हुई जिम्मेदारी निभाना यदि आधुनिकता का लक्षण हो तो गाँधीजी आधुनिक थे।

यदि सहिष्णुता और समझदारी को आधुनिक कहते हों तो गाँधीजी को आधुनिक मानना ही पड़ेगा।

अपने से अलग राय रखनेवाले अथवा अपने विरोधियों के साथ भी स्वस्थ बर्ताव करना, यदि आधुनिक मानें तो गाँधीजी आधुनिक थे।

यदि सत्ता, संपत्ति, स्तर और ओहदे का ख्याल किये बिना सबके प्रति समान सौजन्य-भाव रखना आधुनिकता का लक्षण हो तो बेशक गाँधीजी आधुनिक थे।

दीन-हीनों के साथ तादात्म्य साध लेना यदि आधुनिकता कही जाए तो गाँधीजी आधुनिक थे।

गरीबों, दरिद्रों, दलितों व अभागों के लिए अनथक कार्य करना यदि आधुनिकता हो तो गाँधीजी आधुनिक थे।

सविशेष तो यह कि किसी उत्तम उद्देश्य के लिए मृत्यु तक को स्वीकार कर लेना यदि आधुनिकता का लक्षण माना जाये तो गाँधीजी आधुनिक थे।



मिर्जा इस्माइल

७७. 'संत, राजनीतिज्ञ, राष्ट्रविधायक'

बहुत बार कहा जाता है कि अपने समकालीन किसी आदमी के लिए, उसके अमर हो जाने की बात कहना जोखिमभरा होता है। क्योंकि हो सकता है कि भविष्य की प्रजा अपने पसंदीदा लोगों की कीर्ति अमर बनाये। परन्तु महात्मा-गाँधी की अमरता के बारे में लगाया गया अनुमान, भविष्य में झूठ सिद्ध होने की संभावना बहुत कम है। यह निर्विवाद है कि आज के जीवित हिंदुस्तानियों में वे सर्वश्रेष्ठ हैं। वे भारत की भावना के मूर्तिमंत अवतार हैं और उनकी वाणी के द्वारा भारतवर्ष के हृदय का आत्मीय भाव प्रकट होता है। उन्होंने अपनी सर्वव्यापी मीठी नज़र और अपने उच्च आदर्शों पर चलने के उत्साह के कारण अपने देशबांधवों का हृदय जीत लिया है। हिंद की बहुसंख्यक जनता पर उनका जो असाधारण प्रभाव है, उससे ही अनुमान लगाया जाये तो कहा जा सकता है कि आज ब्रिटिश साम्राज्य में वे सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं।

उनसे अधिक अपने अन्तर्नाद का अनुसरण करनेवाला, धर्मपरायण, और सिद्धान्त की असिधारा पर चलनेवाला पुरुष हिंदुस्तान में कोई नहीं है। राजकार्य में उनसे बड़ा राजनीतिज्ञ भी कोई नहीं है। उनमें विरल प्रकार का नैतिक बल है। उनका व्यक्तिगत जीवन भी पूर्णतः दोषरहित और निष्कलंक है। उनमें मन, वचन और कर्म का समन्वय है, वे अत्यन्त धर्मपरायण हैं। इसीलिए उन्हें निहारते ही हमें अपने साधु-संतों और औलियों का स्मरण होने लगता है। दूसरी ओर वे नवजागृत भारत को प्रेरित करनेवाले नेता हैं। उन्होंने हिंदुस्तानियों में नूतन प्राण सींचा है, उनमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न की है और अपनी संस्कृति के प्रति गौरव का भान करवाया है। वे महान राजनीतिज्ञ हैं, असाधारण द्रष्टा हैं। एक भारतीय राष्ट्र का उदय धीरे-धीरे हो रहा है। गाँधीजी इस राष्ट्र के विधायक हैं, निर्माता हैं।



वल्लभभाई पटेल

७८. 'आंगन में बहती गंगा'

अहमदाबाद के निवासियों की ओर से आपने जो मानपत्र प्रदान किया है उसमें मुझे गाँधीजी के पट्टशिष्य के रूप में वर्णित किया गया है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मुझमें ऐसी योग्यता विकसित हो। परन्तु मैं जानता हूँ, मुझे बिल्कुल पता है कि मुझमें यह नहीं है। इस योग्यता को प्राप्त करने के लिए मुझे कितने जन्म लेने होंगे – मैं नहीं जानता। साथ ही कहता हूँ कि आपने प्रेम के आवेश में जो अन्य अतिशयोक्तिपूर्ण बातें मेरे लिए लिखी हैं, उन्हें मैं पी सकता हूँ। परन्तु इस बात को मैं कतई स्वीकार नहीं कर सकता। आप सब जानते होंगे कि महाभारत में द्रोणाचार्य का एक भील शिष्य था, जिसने द्रोणाचार्य से कुछ भी सुना या सीखा नहीं था। परन्तु गुरु की मिट्टी की मूर्ति बनाकर, उसकी पूजा करता, उसके चरणों में बैठकर उसने द्रोणाचार्य की विद्या सीखी थी। जितनी विद्या उसने प्राप्त की थी उतनी द्रोणाचार्य के किसी अन्य शिष्य ने नहीं पाई थी। इसका कारण क्या था ? कारण यह कि उसमें गुरु के प्रति भक्ति थी, श्रद्धा थी, उसका हृदय स्वच्छ था। मुझे आप जिनका शिष्य कह रहे हैं वह गुरु तो प्रतिदिन मेरे पास होते हैं। उनका पट्टशिष्य तो क्या, अनेक शिष्यों में से एक बन सकूँ इतनी योग्यता भी मुझमें नहीं है – इस बारे में मैं निःशंक हूँ।

मुझे उम्मीद है कि हिंदुस्तान में उनके अनेक शिष्य जागृत होंगे, जिन्होंने उनके दर्शन नहीं किये होंगे, जिन्होंने उनके शरीर की नहीं पर उनके मंत्र की उपासना की होगी। इस पवित्र भूमि में कोई तो ऐसा सजग जागृत होगा ही। कितने ही लोग कहते हैं कि गाँधीजी के जाने के बाद क्या होगा ? पर मैं इस संबंध में निर्भय हूँ। उन्हें जो करना था, कर लिया है। अब तो बाक़ी रहा है, वह आपको और मुझे करना है।



जॉन हेन्स होम्स

७९. 'एक नरोत्तम'

आज से लगभग बीस वर्ष पहले मैंने अमेरिका की जनता के समक्ष कहा था कि 'गाँधीजी इस जगत के सर्वोत्तम पुरुष हैं।' उस समय पश्चिम के देशों में उनका नाम अधिक परिचित नहीं हुआ था।

गाँधीजी को इस युग में अग्रस्थान मिला है, उसका कारण सामान्यतः प्रतिभा या कीर्ति में गिनी जानेवाली कोई वस्तु नहीं है। वे किसी सेना के अधिपति नहीं या राज्य-विजेता नहीं। ऊँचे ओहदे पर बैठकर प्रजा पर अपना शासन चलानेवाले राजपुरुष नहीं। वे दार्शनिक नहीं। अन्य कुछ नहीं तो बाहर से प्रभावशाली लोकनेता जैसे चमकदार और प्रतापी व्यक्तित्व के लक्षण भी उनमें नहीं। उनकी प्रतिभा तो आत्मा के क्षेत्र में झलकती है। अपने आत्मबल के कारण वे जो कार्य कर सके हैं, उसे करनेवाले विश्व-इतिहास में अंगुली पर गिने जानेवाले बड़े-से-बड़े लोगों को वे पीछे छोड़ देते हैं तो अन्य किसी की क्या औकात !

हिंदुस्तान को जब आखिर में आजादी मिलेगी तब उसका श्रेय अन्य किसी हिंदुस्तानी से अधिक गाँधीजी को दिया जायेगा। गाँधीजी ने अपने देशबांधवों के स्वदेशी संस्कार को दोबारा जागृत किया, उनमें आत्मगौरव और स्वाभिमान की वृत्ति को सतेज किया, उनके हृदय और मन को आत्म-संयम की शिक्षा दी। इस प्रकार देश-बंधुओं को जैसे स्वराज्य लेने में समर्थ बनाया, वैसे ही उसका उपभोग करने योग्य भी बनाया। उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ आत्मा की मुक्ति भी प्रदान की-ऐसे भगीरथ कार्य करने का यश भी उन्हें दिया जायेगा और इसके लिए उनकी स्तुतिया गायी जाएगी। साथ ही अस्पृश्य वर्ग के लोगों को दुख एवं दासत्व से छुटकारा दिलवाने के रूप में मानवमुक्ति के महान कार्य स्वरूप जगत-इतिहास में यह चिरस्मरणीय रहेगा। अंत में आता है गाँधीजी का सर्वश्रेष्ठ कार्य। उन्होंने 'अहिंसक प्रतिकार' का सिद्धान्त लेकर जगत में स्वतंत्रता, न्याय और शांति की स्थापना का साधन बनाया है।



संसार में, भूतकाल में हुए अनेक महात्माओं की पंक्ति में गाँधीजी रखने योग्य हैं। विल्बर फोर्स, गैरीसन और लिंकन की भाँति वे गुलामों के महान मुक्तिदाता हैं। 'अमोघ प्रेम' के शिक्षक के रूप में वे संत फ्रांसिस, थोरो तथा टॉलस्टॉय की पंक्ति में बैठते हैं। सर्वकाल के सर्वश्रेष्ठ धार्मिक पैगम्बरों में वे लाओत्से, बुद्ध, जरथुस्ट और ईसा के समान हैं। लेकिन इन सब की अपेक्षा उनकी महत्ता एक नरोत्तम के रूप में, एक पुरुष श्रेष्ठ के रूप में अधिक है। उनके बारे में मैंने अपनी एक पुस्तक में लिखा है :

“वे विनम्र, विनयी और अतिशय प्रेमल हैं। उनकी विनोदवृत्ति अदमनीय है। उनकी सरलता मुग्ध करनेवाली है। उनकी शांति अगाध है। उनका हृदय कुसुमवत कोमल है तो वज्रसम कठोर भी हो सकता है। उनमें संकल्प बल अदम्य है। उनकी हिम्मत पर्वत जैसी अडिग है। उनके मन-वचन-कर्म की एकाग्रता इतनी पारदर्शी है कि खुली आँखों से देखी जा सकती है। उनकी सत्य की उपासना अविचल है।”



अमृतलाल बेगड़

८०. 'अहिंसा को युद्ध के मैदान में लानेवाले'

किसी देश का इतिहास अधिकांशतः वहाँ के राजाओं का इतिहास होता है। राजा एक दूसरे पर आक्रमण करते रहते इसलिए युद्ध चलते ही रहते थे। इस रूप में इतिहास मुख्यतः हिंसा का इतिहास होता है।

परन्तु यदि मानवजाति मात्र हिंसा में ही मशगूल रही होती तो दुनिया कब की नष्ट हो गई होती। दुनिया बची हुई है इसका कारण है कि हिंसा के साथ-साथ अहिंसा का भी इतिहास है। अहिंसा के उद्भव की बात करनी हो तो कृष्ण से ही करनी चाहिए। महाभारत के युद्ध को टालने की उन्होंने भरसक कोशिश की, पाण्डवों के दूत बनकर कौरव सभा में गये, परन्तु दुर्योधन के हठाग्रह के कारण युद्ध टल न सका। अपनी विशाल सेना कौरवों को सौपी और स्वयं पाण्डवों के साथ रहे परन्तु शर्त यह रखी कि, मैं शस्त्र धारण नहीं करूँगा।

आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व कृष्ण ने इस कथन द्वारा संसार को एक महत्त्वपूर्ण संदेश प्रदान किया – हिंसा भले ही अनिवार्य हो, परन्तु श्रेष्ठ तो अहिंसा ही है। महाभारत का युद्ध अनिवार्य बन गया है। एक आवश्यक अनिष्ट के रूप में इसे स्वीकारे बिना छुटकारा नहीं है। लेकिन हिंसा किसी के हित में नहीं है; इसीलिए इस हिंसा में मैं तो शामिल नहीं रहूँगा।

युद्ध के अंत में पाण्डवों की विजय तो होती है, परन्तु भीषण मानव-संहार को देख युधिष्ठिर दो बार कहते हैं कि यह विजय पराजय जैसी है। युधिष्ठिर के मुख से इन शब्दों को व्यक्त करवा कर व्यास ने हिंसा की निरर्थकता ही दर्शाई है।

कृष्ण के बहुत वर्षों बाद आये बुद्ध और महावीर दोनों समकालीन। इन्होंने अपने स्थापित बौद्ध तथा जैन धर्म में अहिंसा को ही प्रतिष्ठित किया। कलिंग युद्ध में हुए नर-संहार को देख अशोक का हिंसा से विश्वास उठ गया। उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। अहिंसा जैन धर्म का तो प्राण है। हज़ारों साधू-संतों ने भी अहिंसा की ही महिमा सिद्ध की है।



अंत में आए – गाँधीजी के साथ अहिंसा ने चौकड़ी भरी। जब तक गाँधी नहीं आये थे तब तक अहिंसा व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्त करने के लिए थी। गाँधी ने कहा कि सत्य और अहिंसा मात्र व्यक्तिगत जीवन में अभीष्ट नहीं है बल्कि समूह में, सामूहिक लड़ाई में भी यह उतनी ही आवश्यक है। सत्य, अहिंसा का उपयोग शस्त्र की भाँति भी हो सकता है। हिंसक हथियारों से यह अधिक शक्तिशाली है। उन्होंने इसे कोटि-जन-व्यापी आंदोलन का रूप दिया, इसे युद्ध के मैदान में उतारा तथा इसका उपयोग एक विशाल देश की आज़ादी प्राप्त करने के लिए किया।

हम फिर से कुरुक्षेत्र चलें। जिनके नेतृत्व में पाण्डव युद्ध कर रहे थे, उन कृष्ण ने शस्त्र धारण नहीं किया, सत्य है, परन्तु समस्त पाण्डवों ने तो शस्त्र धारण किया ही था। मान लीजिए कि कृष्ण ने कहा होता, “मेरे हाथों में शस्त्र नहीं है। अर्जुन और भीम के हाथों में भी शस्त्र नहीं है। हमारी समस्त सेना निःशस्त्र है। पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य चलाइए बाण। हम यहाँ मारने नहीं, मरने आये हैं। हम आपके अन्याय के समक्ष नहीं झुकेंगे। पूरी ताकत से उसका विरोध करेंगे। पर विरोध हम हिंसा से नहीं, अहिंसा से करेंगे। शस्त्र उठाना तो दूर की बात है, आपके लिए हमारे मन में प्रेम ही है और हम आपको प्रेम से जीतेंगे।”

कृष्ण ने ऐसा कहा नहीं था, परन्तु गाँधी ने कहा, कहा ही नहीं, करके दिखाया। दुनिया के सर्वाधिक शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से उन्होंने कहा, “हमें गुलाम बनाने का आपको कोई अधिकार नहीं है। आपके इस अन्याय का हम विरोध करेंगे – परन्तु हिंसा से नहीं, सत्य और अहिंसा से। आप खुशी से गोली चलाइए, लाठीचार्ज कीजिए, अश्रुगैस छोड़िए और जेल में डाल दीजिए। हम आपसे एक भी कटु शब्द नहीं कहेंगे। हमारे मन में आपके लिए गुस्सा, चिढ़, नफ़रत नहीं है, सिर्फ़ प्रेम ही होगा।”

संसार में ऐसा कभी नहीं हुआ था। गाँधी ने अहिंसा का 'राष्ट्रीयकरण' किया। उन्होंने पहली बार सत्य और अहिंसा का व्यापक रूप से सफलतापूर्वक प्रयोग किया। आम जनता का



पहली बार अहिंसा के साथ गहरा संबंध जुड़ा। अहिंसा द्वारा इस गुलाम देश को आजाद करवा कर गाँधी ने शूरवीरता की नयी परंपरा क्रायम की।

जैसे हिंसा ने प्रगति की है, वैसे ही अहिंसा ने भी प्रगति की है। यह व्यक्तिगत अहिंसा से आगे बढ़कर सामूहिक अहिंसा तक पहुँची है। समस्त मानवजाति के लिए यह सुखद संवाद है।



नगीनदास संघवी

८१. 'कान की एक बूटी'

गाँधीजी हरिजन-फंड (चंदा) के लिए भारत-भर में घूम रहे थे। देहरादून में आसपास के गाँवों से दर्शन करने आई स्त्रियों की सभा में उन्होंने एक नया खेल चलाया। चंदा इकट्ठा करने के लिए वे स्वयं सभा में उतरे और अपनी अंजलि सामने किये हुए चलने लगे। प्रसन्नता से उमगी गरीब स्त्रियाँ उनकी अंजलि में पाई, पैसा, आना, अधेला, रुपया, नोट और गहने डालने लगीं। अंजलि भर जाती तो महात्माजी हथेलियाँ अलग कर सब कुछ नीचे गिर जाने देते और 'मेरा कर-पात्र खाली है, भर दीजिए' कहते जाते। आध घंटे तक यह खेल चला। सभा विसर्जित हुई।

नीचे बिखरे सिक्के आदि उठाकर एकत्रित करने का काम महावीर त्यागी को सौंप कर महात्माजी चले गये। छुट्टे पैसे, नोट और गहने इकट्ठा करके, उनकी सूची बनाकर महावीरजी खुश होकर घर पहुँचे। तभी रात के साढ़े नौ बजे तुरंत हाज़िर होने का संदेश मिला। त्यागी वहाँ पहुँचे तो गाँधीजी बहुत गुस्से में थे, 'काम हाथ में लो तो कुछ जवाबदारी समझते हो या नहीं?' – बेचारे महावीर तो मुँह बाए देखते रह गये।

'सभा में नीचे बिखरा हुआ सब कुछ इकट्ठा क्यों नहीं किया? महावीर ने डरते-डरते कहा: 'जी, सभी चीजें उठा ली गई हैं।' नहीं ली गई हैं। - गाँधीजी ने कहा। 'किसने कहा?' – त्यागी के इस सवाल के जवाब में गाँधीजी ने एक छोटी-सी कान

की बूटी ऊँची करके दिखाते हुए कहा, 'यह बूटी कहती है, उसकी जोड़ी नहीं है। बूटी देनेवाली महिला एक बूटी तो देगी नहीं, इसकी जोड़ी वहाँ अवश्य होनी चाहिए। तुम्हें मिली नहीं, इसका अर्थ यह है कि तुमने पूरी छानबीन नहीं की।'

महावीर त्यागी अपने संस्मरण में लिखते हैं कि 'रात में किट्सन लाइट जलाकर हम चले। समस्त तिरपालों को उलट-पुलट कर ढूँढा। भगवान की कृपा कि वह बूटी तो मिली, पर



साथ में फुटकर और मुड़े-तुड़े नोट मिलाकर लगभग दो सौ रुपये की रकम इकट्ठी हो गई। वह सब बापू के पास भेजा। परन्तु काफ़ी दिनों तक तो उन्हें मुँह दिखाने में भी शर्म आती थी।'



चंद्रशेखर प्रा. शुक्ल

८२. 'गरीबी को भी पीछे छोड़ने वाली।'

आलस्य हिंद का बड़ा और पुराना रोग है। गरीबी भी बहुत बड़ी व्याधि है; परंतु गरीबी का मूल महत्त्वपूर्ण कारण आलस्य है। हिंद की गरीबी के एक इलाज के रूप में गाँधीजी ने चरखा और खादी को सामने रखा। इसका प्रचार करते हुए १९२४-२५ की यात्राओं में, जनमानस का जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर उन्होंने कहा कि हमारी जनता में आलस्य गरीबी से भी आगे निकल जाने वाला है।

आलस्य करके शरीर चुपचाप पड़ा रहे तो भी मन चुप नहीं बैठता। निरुद्यमी व्यक्ति का मन बुरे विचारों से जुड़ता है और अपने साथ-साथ दूसरों का भी सत्यानाश करता है। इसी से यह कहावत बनी है न 'बेकार बैठा विनाश करे'। अंग्रेज़ी में भी कहावत है कि 'खाली दिमाग़ शैतान का कारखाना है।' दुनिया में घटनेवाले अनेक अपराध और मारपीट के पीछे बैठे-ठाले लोगों का हाथ होता है, यह विचारणीय है।

प्राचीन रोम का साम्राज्य दूर देशों तक फैला और वहाँ से ख़िराज के रूप में गाड़ियाँ भर-भर कर आनेवाला अनाज, रोम की प्रजा को मुफ़्त में बाँट दिया जाता था। जो लोग पहले खेतों में परिश्रम करते हुए जोरावर बने हुए थे, मुफ़्त का अनाज पाकर वे निष्क्रिय हो गये। रोम के इसी वर्ग में मस्ती-धमाल शुरू हो गई। मेहनत छोड़ने से प्रजा विलासी और दुर्बल बनी। रोम के पतन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। जंगली परन्तु बलवान लोगों ने उत्तर से आकर रोम को जीत लिया।

हमारे देश में भी मध्ययुग के प्रारम्भ में वैभव, विलास और आलस्य की वृद्धि हुई, जिसके कारण हम युद्ध हारे और पराधीन हुए। बिना मेहनत किये, बैठे-बैठे खाना मिले – यह एक व्यक्ति और समस्त जनता, दोनों के लिए शाप के समान है। समाज, देश और जीवन की



नवीन रचना अगर करनी है तो उसके लिए अविश्रांत उद्यम आवश्यक है। जगत के समस्त महापुरुषों में यदि कोई समान गुण है तो वह अविरत परिश्रम का ही है।



८३. स्वच्छताका पाठ

उद्यम के संबंध में, हम सब के लिए, सेना से बहुत कुछ सीखने लायक है। सेना का जवान जो सम्मान पाता है उसका मुख्य कारण तो यही है कि वह जान हथेली पर लेकर मौत का सामना करने जाता है। परन्तु उसके प्रति विशेष आदर होने का एक दूसरा कारण उसका नियमबद्ध तथा अनुशासन-युक्त जीवन भी है। सेना की छावनी देखें तो मानो स्वच्छता का नमूना ही होता है।

एक बार गाँधीजी ने हमें यह पाठ सिखाया था। १९३४ की हरिजन-यात्रा के दौरान हम दुर्ग में थे। एक सुबह उस स्थान को छोड़कर जाने के समय वे हमारे कमरे में आये। जगह-जगह कचरा, कागज़ का टुकड़ा बिखरा हुआ देख उनकी आँखें बदल गईं। वे बोले: 'इस स्थिति में यह स्थान छोड़ कर यहाँ से कैसे जाया जा सकता है ? सेना ने जहाँ पड़ाव डाला हो, वहाँ से मुक़ाम उठाते समय स्थान को बिल्कुल साफ़ करके ही जाना होता है – यह नियम होता है। यह नियम हमें भी पालन करना चाहिए। अतः अब प्रतिदिन जिस जगह से प्रस्थान करो, उस स्थान को अच्छी तरह साफ़ छोड़ कर ही निकलना। मैं देखूँगा और यदि ग़लती हुई तो अच्छी ख़बर लूँगा।'



महादेव देसाई

८४. 'वियोग-दुख'

सन १९१७ का दिसम्बर महीना था। उस समय मैं गाँधीजी के साथ नया-नया जुड़ा था। मुस्लिम लीग की कलकत्ता की सभा में, छिंदवाड़ा में कैद किए गए अली भाइयों में से एक को, सभापति बनाया गया और सभापति की कुर्सी खाली रखी गई थी। गाँधीजी को वहाँ आने का विशेष निमंत्रण था। दोपहर में हम वहाँ गये, तो उर्दू में तक्ररीरों की बहार चल रही थी। हर वक्ता पल-पल में ऐसे वचन बोलता था कि पूरी सभा खड़ी होकर 'आमीन', 'आमीन' कहकर समर्थन देती थी। प्रत्येक की आँखें बरस रही थीं, कितनों के फफकने की, ज़ोर से रोने की आवाज़ भी सुनाई पड़ती थी।

ऐसे में, गाँधीजी से बोलने के लिए कहा गया। वे रोनेवालों में शामिल नहीं हुए, उन्होंने तो श्रोताओं से सीधे-सीधे कुछ प्रश्नों के जवाब माँगे।

“आँसुओं की जो यह बरसात हो रही है, क्या ये आँसू सच्चे हैं ? यदि आपको शौकतअली और मोहम्मदअली के वियोग का दुख सचमुच सता रहा है तो आपकी आँखों से पानी नहीं बल्कि लहू बहना चाहिए। यदि आपके ये आँसू इस बात की साक्षी देते हों कि आप दोनों भाइयों को छुड़वाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, प्राण तक जोखिम में डालने को तैयार हैं, तो ये आँसू सच्चे हैं।”

आज, यही प्रश्न हम स्वयं से पूछ सकते हैं। गाँधीजी को विदाई देने जानेवाले सभी स्वजनों के भाव क्या सच्चे थे ? उनकी विदाई के दिन अनेक घरों में कोने में बैठकर रोनेवालों के आँसू क्या सच्चे थे ? यदि सच्चे थे, तो हमने उनके जाने के बाद क्या किया ?

वियोग दुख की विह्वलता के चित्र हमारे साहित्य में – बल्कि जगत के साहित्य में – भरत के पात्र में जैसे मिलते हैं वैसे कहीं भी नहीं मिलते। भरत को रामचंद्रजी को विदा देने का लाभ नहीं मिला था। गाँधीजी को विदाई देकर, उनके संदेश सुनने का जो सौभाग्य हममें



से कइयों को मिला था, वह भरत के भाग्य में न था। भरत को अपने भाई के वियोग की बात अयोध्या पहुँच कर ज्ञात हुई, जिस अयोध्या में उसके आँसू पोंछकर, संसार के दुख क्षणिक हैं समझाकर, राज्य ग्रहण करने की सलाह देनेवाले स्वजन ही क्यों, गुरुजन भी थे। परन्तु भरत ने उनमें से किसी की सलाह पर कान नहीं दिया। उन्हें तो सब सुझाव विषमय लगे। क्षण-भर भी रामचंद्रजी को देखे बिना जीना दुखद लगा। तत्क्षण उन्होंने रामचंद्रजी के दर्शन करने चाहे, उनके चरण-स्पर्श करके ठंडक पाने और संभव हो तो उन्हें वापस अयोध्या लाने का निश्चय किया।

यह निश्चय करवाकर, तुलसीदास भरत को सीधे रामचंद्रजी के पास नहीं ले जाते। भरत रामचंद्रजी से मिले, उससे पहले अश्रु से भीगा भरत का हर कदम, हर स्थल को कवि ने चित्रित किया है। बावरे से भरत रथ में निकलते हैं। गंगाजी पार करने के समय रामचंद्रजी का परम भक्त गुहक उन्हें मिलने आता है। रामचंद्रजी के भक्त को अपने लिए पूज्य मानकर, दूर से ही रथ से उतर कर गुहक को प्रणाम करते हैं। राम को जिस श्रद्धा और भक्ति से निहारते, उसी श्रद्धा और भक्ति का अनुभव उन्हें देखकर करते हैं। रामचंद्र किस ओर गये हैं यह जानकर ही भरत गुहक से विदा नहीं लेते – बल्कि वे कहाँ उतरे थे, कहाँ सोये थे, कहाँ बैठे थे – सब पूछकर उन प्रत्येक स्थान की पदरज ग्रहण करते हैं और राम नाम का उच्चारण करते हुए अश्रुपात करते हैं। गुहक के साथ रामचंद्रजी के पास जाकर भरत की विनती, अंत में भिक्षा रूप में उनकी पादुका और खिन्न हृदय से नंदिग्राम में पुनरागमन – आदि प्रसंग कठोर से कठोर हृदय को द्रवित कर देनेवाले हैं। रामचंद्रजी के वनवास के दुख, सीताजी का दुख भूला जा सकता है परन्तु भरत का वियोग-दुख, भरत की चौदह वर्ष की उग्र तपस्या की प्रतिज्ञा, प्रभु को पाने के लिए प्रभु जैसा दुख-कष्ट सहकर जीने की प्रतिज्ञा कोई भूल नहीं सकता।

भक्ति की ऐसी पराकाष्ठा और वियोग-दुख के पश्चात् किया गया ऐसी पराकाष्ठा का तप जिस देश ने जाना है, उस देश में क्या धर्म का इतना लोप हो गया है कि वह अपना वियोग दुख भूल जाये और पूर्ववत् कर्तव्यविमुख, विलासप्रिय अवस्था में लौट जाये ? जेल जाने के



पहले गाँधीजी प्रजा के समक्ष अपना संदेश देने में नहीं चूके। 'पतंग नृत्य' जैसा लेख लिखकर प्रजा के रोग की चिकित्सा और उसका निदान मुखर रूप में कह गये। गाँधीजी के लिए रोनेवाले कितनों ने उस संदेश पर अमल किया ? जहाँ आँख से रक्त की धारा बहनी चाहिए, जब देश में अखण्ड विरहाग्नि सुलगती रहनी चाहिए, वहाँ जिधर देखिए या तो निराश उदासीनता का माहौल है, अथवा मृत्यु की ओर बढ़ती विलासिता की शहनाई बज रही है।

कौन कहेगा कि इस देश को वियोग-दुख हो रहा है ?



रवीन्द्रनाथ ठाकुर

८५. 'कलेजे में ज्वालामुखी, आँखों में अमृतधार'

संकट की घड़ी में महात्मा गाँधी आ पहुँचे और भारत के करोड़ों कंगालों के द्वार पर जा खड़े हुए, उनके जैसे वेश में, उनके जैसी वाणी में बोलते हुए। प्रेम का यह अवतार जैसे ही भारत की दहलीज़ पर आकर खड़ा हुआ जैसे ही फटाक से दरवाज़ा खुल गया।

गाँधीजी महान राजनीतिज्ञ हैं, प्रतिष्ठित और बड़े-बड़े संगठन स्थापित करनेवाले हैं, बड़े लोकनेता हैं, बड़े सुधारक हैं, परन्तु इन सब से अधिक उनकी महानता एक मानव के रूप में है।

दृढ़ आदर्शवादी होने पर भी वे मात्र आदर्शों को नहीं, मनुष्य को चाहनेवाले हैं।

इनके पास न तो बाहुबल है, न धन-संपत्ति। लेकिन उनके ज़बरदस्त प्रभाव के परिणामस्वरूप, एक पराधीन प्रजा जुल्मी सत्ता के विरुद्ध सिर उठाकर खड़ी हो गई है। लोगों को उनमें आस्था है और अपनी श्रद्धा के कारण वे मरने को तैयार हुए हैं, वे दुख सहने को तत्पर हैं। यह एक चमत्कार है कि सदियों से कुचले हुए लोग अब सिर उठाकर बाहर निकल पड़े हैं। किसी को कोई तकलीफ़ पहुँचाए बिना, स्वयं सब कुछ सहन कर रहे हैं और इस सहनशक्ति के मार्फ़त विजयी बन रहे हैं।

गाँधीजी की सफलता का रहस्य उनमें स्पंदित आत्मबल और अकूत त्याग में है। उनका जीवन यानी अखण्ड त्याग है। किसी सत्ता का उन्हें लोभ नहीं, न मोह किसी ओहदे, नाम, धन या कीर्ति का। उनकी त्याग की शक्ति सविशेष दुर्जय बन जाती है क्योंकि उनकी असीम निर्भयता के साथ उसकी गाँठ बंधी हुई है। महाराजा और शाहंशाह, बंदूकें और संगीनें, कारावास और यातनाएँ – अरे मौत तक भी गाँधी की तेजस्विता को डिगाने की ताक़त नहीं रखती।



कदाचित् उन्हें सफलता प्राप्त न हो, जैसे बुद्ध निष्फल रहे, ईसा असफल सिद्ध हुए, वैसे ही संभव है कि ये मानवजाति को अन्याय के आचरण से रोक न सके। परन्तु सदा के लिए वे एक ऐसे नर के रूप में स्मरण किये जायेंगे जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन आनेवाले युगों के लिए एक दृष्टांत बना कर प्रस्तुत किया है।



लुई फिशर

८६. 'गाँधीजी और टैगोर'

गाँधीजी और टैगोर समकालीन थे। दोनों ही भारत के पुनरुत्थान के उद्देश्य से गहरे जुड़े हुए थे।

परन्तु गाँधीजी थे अनाज के खेत जैसे;

टैगोर थे गुलाब के बाग़ जैसे।

गाँधीजी थे कर्मरत हस्त जैसे;

टैगोर सुरीले कंठ जैसे।

गाँधीजी थे सेनापति।

टैगोर थे अग्रदूत

गाँधीजी थे कृश तपस्वी,

टैगोर थे शाही पुरुष।

परन्तु भारत और मानवजाति के प्रति प्रेम के संबंध में दोनों में एकरागता थी।



प्यारेलाल नैय्यर

८७. 'छोटी-छोटी बातों के माध्यम से जीवन-गढ़न'

अहिंसा अर्थात् 'नितांत शुद्धि' आंतरिक और बाह्य दोनों, गाँधीजी ने एक बार यह व्याख्या दी थी। उन्होंने कहा था कि, आज तो गाँव कंगाल बन गये हैं। शहरों को थोड़ा मोहक बनाया गया है परन्तु ग्रामों में निवास करते करोड़ों लोगों को अज्ञान की बुरी दशा में छोड़ दिया गया। वहाँ पीने के लिए स्वच्छ जल तक कहीं नहीं मिलता, ग्रामवासियों की शिक्षा की ओर भी दुर्लक्ष किया गया और उनके दिमाग में अंधकार व्याप गया। ऐसे अनेक प्रकार के रोगों से प्रत्येक गाँव पीड़ित होने लगा, जिन्हें रोका जा सकता है। प्रत्येक गाँव में ढेरों ठग-धूर्त हैं जो ग्रामवासियों को शिकार बना रहे हैं। देह और दिमाग को प्रभावित करनेवाले इस भयंकर रोग का निवारण करने के कार्य में हमें जुट जाना चाहिए। हिंदुस्तान में लोगों की कमी नहीं है परन्तु आवश्यकता है योग्य दिशा में सामूहिक पुरुषार्थ की। तब दुर्जनों को फलने-फूलने का अनुकूल वातावरण वहाँ नहीं रहेगा। लोगों के सहयोग की बुनियाद पर प्रयास द्वारा गरीबी और अज्ञान दूर होगा, तथा फिर से उनके बीच एक रागभरा संबंध स्थापित होगा।

इसी प्रकार, अहिंसा की शक्ति का परिचय देने के लिए ग्रामीणों के दैनिक अनुभवों को स्पर्श करती छोटी-छोटी बातों पर गाँधीजी प्रवचन देते। गाँधीजी के लिए छोटे-तुच्छ विषय और महत्त्वपूर्ण विषय जैसा कोई भेद ही नहीं था। सत्याग्रही के प्रत्येक कार्य में चाहे वह निजी जीवन से संबंधित हो या सार्वजनिक जीवन से, सच्ची गूँज होनी चाहिए। छोटे या बड़े, उसके प्रत्येक कार्य द्वारा सत्य का दर्शन होना ही चाहिए। गाँधीजी कहते थे कि छोटी-छोटी बातों द्वारा, हर आदमी कर सके ऐसी सामान्य वस्तुओं द्वारा, मैंने अपने जीवन को गढ़ा है। इसीलिए जो मैंने सिद्ध किया है वह प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध कर सकता है।



८८. 'अंतिम दिन'

३० जनवरी के, उस दैवनिर्मित शुक्रवार को, गाँधीजी की भावना थी कि दो दिन पश्चात् सेवाग्राम के लिए प्रस्थान करेंगे। उनसे पूछा गया कि 'आपके वहाँ पहुँचने की तारीख की सूचना तार द्वारा सेवाग्राम भेज दें ?' तो उन्होंने कहा, 'तार के पैसे क्यों बर्बाद करें ? यहाँ से निकलने की तारीख मैं संध्या के प्रार्थना-प्रवचन में ज़ाहिर कर दूँगा और सेवाग्रामवालों को तार पहुँचने से पहले ही समाचार-पत्र से यह जानकारी प्राप्त हो जायेगी।'

उस दिन स्नान करके आने के पश्चात् वे बहुत प्रफुल्ल लग रहे थे। आश्रम की लड़कियों ने, उनके दुबले, सीकिया शरीर के लिए, मज़ाक़ उड़ाया। किसी ने बताया कि एक बहन आज सेवाग्राम जानेवाली थी पर सवारी न मिलने से गाड़ी छूट गई। यह सुनकर गाँधीजी बोले, 'वह पैदल चल कर स्टेशन क्यों नहीं पहुँच गई ?' गाँधीजी की यह अपेक्षा रहती थी कि अपने पास जो साधन हो उसी के आधार पर किसी भी परिस्थिति से निबटने के लिए हर किसी को तैयार रहना चाहिए। सुविधा का अभाव या कठिनाई आदि बहाने उन्हें स्वीकार नहीं होते थे। दक्षिण भारत में उनके प्रवास के दौरान एक बार वाहन में पेट्रोल ख़त्म हो गया, तब तेरह मील दूर स्टेशन पहुँचने के लिए सामान उठाकर पैदल जाने के लिए वे तैयार हो गये थे।

*

सर्दी की वजह से उन्हें तेज़ खाँसी हो गई। इसके शमन के लिए किसी ने पेनिसिलिन की गोलियाँ चूसने की सलाह दी। तब एकमात्र रामनाम की शक्ति से ही स्वस्थ होने का अपना निर्णय गाँधीजी ने अंतिम बार फिर से दोहराया। उनके सिर की मालिश करनेवाले परिचारक से उन्होंने कहा : 'यदि मैं किसी रोग से मरूँ, चाहे एक छोटी-सी फ़ुँसी ही क्यों न हो, तो तू पुकार-पुकार कर दुनिया से कहना कि यह दंभी महात्मा था। मैं जहाँ भी रहूँगा, मेरी आत्मा को तभी शांति मिलेगी। भले ही मेरी खातिर लोग तुझे गाली दें, परन्तु यदि मैं रोग से मरूँ तो मुझे दंभी महात्मा ही ठहराना। पर कदाचित मुझे कोई गोली मारे और मैं



उसे सीने पर झेलते हुए भी, मुख से आह न निकाल रामजी का नाम रटता रहूँ, तभी कहना कि मैं सच्चा महात्मा था।

*

दोपहर चार बजे के बाद गाँधीजी ने कातते हुए घंटे-भर तक सरदार पटेल से बातें कीं। बातें करते हुए ही शाम का भोजन लिया। प्रार्थना का समय हो गया था पर बातें पूरी नहीं हुई थीं। आभा की हिम्मत नहीं हो रही थी कि बीच में बोले, पर गाँधीजी की घड़ी उठाकर उसने उनके सामने रखी। लेकिन कुछ असर नहीं हुआ। अंत में वे सरदार से यह कहते हुए खड़े हो गये कि, 'अब तो जाये बिना छुटकारा नहीं।' फिर आभा और मनु के कंधों पर अपने दोनों हाथ रख कर उनसे ठिठोली करते वे प्रार्थनास्थल की ओर चले। प्रार्थना-स्थल के चबूतरे की तरफ़ जाते सीढ़ियाँ पार करते हुए वे बोले, 'मैं दस मिनट देर से पहुँचा हूँ। विलम्ब करना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। मैं चाहता हूँ कि मैं ठीक पाँच बजे प्रार्थना में उपस्थित रहूँ।'

यही बापू के अंतिम शब्द थे।

* * *



वैष्णव जन

(राग खमाज - ताल धुमाळी)

वैष्णव जन तो तेने कहीए, जे पीड पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे. ध्रु०
सकळ लोकमां सहने वंदे, निंदा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चळ राखे, धन धन जननी तेनी रे. १
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे. २
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताळी लागी, सकळ तीरथ तेना तनमां रे. ३
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैयो तेनुं दरसन करतां, कुछ एकोतेर तार्या रे. ४

* * * * *

